आधुनिक विज्ञान में जातीय प्रश्न

जाति और मनोविज्ञान

लेखक

ओटो क्लिनबर्ग

अनुवादक

डॉ. हरवंश लाल शर्मा

एम. ए., पी. एच. डी., डी. लिट्

संयुक्त राष्ट्र की शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संस्था के सह-प्रबन्ध से भारत के राष्ट्रीय कमीशन के तत्वावधान में भारत में प्रकाशित

ओ रि य न्ट लौं ग म न्स

बम्बई कलकत्ता नई दिल्ली मद्रास

ओरियन्ट लौंगमन्स प्राइवेट लिमिटेड
१७ चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता १३
निकोल रोड, बैलार्ड एस्टेट, बम्बई १
३६ए माउंट रोड, मद्रास २
२४।१ कैन्सन हाउस, आसफ अली रोड, नई दिल्ली
मेन गनफाउन्ड्री रोड, हैदराबाद
१७ नाजिमुद्दीन रोड, ढाका
लौंगमन्स, ग्रीन एण्ड कम्पनी लिमिटेड
६ और ७ क्लिफर्ड स्ट्रीट, लंदन डब्ल्यू १
एवं
न्यूयार्क, टोरोन्टो, केप टाउन, तथा मेलबोर्न

394-H
/

संयुक्त राष्ट्र की शिक्षा, विज्ञान
और संस्कृति संस्था, पेरिस द्वारा
अंग्रेजी संस्करण—अप्रेल १९५१, नवम्बर १९५१
अप्रेल १९५२, अप्रेल १९५३
हिन्दी संस्करण प्रथम प्रकाशन—अक्टूबर १९५७

154306

मुद्रक : ब्रजलाल पाण्डेय, युनाइटेड कमर्शियल प्रेस लि०
१, राजा गुरुदास स्ट्रीट, कलकत्ता ६

सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	५
सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां	८
परिस्थिति के परिवर्तनों का प्रभाव	१६
कुछ सम्बद्ध (मिली-जुली) समस्याएँ	२६
शरीर रचना और मानसिक अवस्था	२६
योग्यता की उच्च सीमाएँ	२८
जाति-मिश्रण के प्रभाव	२९
विकास-क्रम की समस्या	३२
विशिष्ट योग्यताओं में भेद	३३
व्यक्तित्व और स्वभाव में पाये जाने वाले भेद	३४
जाति और अनियमित व्यवहार	३७
सांस्कृतिक भेद	३८
वंश-परम्परा	४०

भूमिका

'मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा' के अंतर्गत एक धारा इस प्रकार है—

> प्रत्येक व्यक्ति इस घोषणा में निर्धारित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं को बिना किसी प्रकार के भेदभाव, जैसे जाति, रंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक अथवा अन्य विचारधारा, राष्ट्रीय अथवा सामाजिक उत्पत्ति, सम्पत्ति, जन्म अथवा अन्य पद के प्राप्त करने का अधिकारी है।

घोषणा के इस अंश के कार्यान्वित करने में जो बाधाएं हैं उनमें से एक यह दृढ़ और बहु प्रचलित विश्वास है कि कुछ कौमें नीची हैं इसलिए उन्हें दूसरों के समान अधिकार नहीं हैं। नाजी जर्मनी में यह विश्वास शासकों की सरकारी नीति का अंग था, जिसके कारण कुछ लोग जैसे पोलेण्डवासी, केवल गुलाम मजदूर बनने के योग्य समझे जाते थे, तथा दूसरे लोग जैसे यहूदी अधिकतर बिल्कुल खत्म कर दिये गए थे। नाजी लोग तो इस विचारधारा के सबसे अधिक मानने वाले हैं जिनका यह विश्वास है कि कुछ जातियां ऊंची हैं तथा अन्य नीची हैं। किन्तु अकेले नाजी ही इस विचारधारा के नहीं हैं, दूसरे भी हैं।

कुछ वैज्ञानिकों ने भी जातीय प्रभुत्व के पक्ष में दिए गए तर्कों की हिमायत की है। यह एक अजीब लेकिन समझ में आनेवाली बात है कि वे वैज्ञानिक जिन्होंने इस बात का समर्थन किया है, प्रायः इसी नतीजे पर पहुंचे हैं कि उनकी अपनी ही जाति दूसरी जातियों की अपेक्षा ऊंची है, जैसे कि कुछ जर्मन विद्वानों का यह निश्चित विश्वास था कि उत्तरी यूरोप के निवासी बौद्धिक सम्पत्ति, चरित्र और नैतिकता में बाकी मानव समाज की अपेक्षा बढ़कर हैं। इटली का एक शरीर रचना विशेषज्ञ इस विषय में यकीन करता था कि हमारी सभ्यता में सबसे बड़ा योगदान भूमध्यसागर की समीपवर्ती जातियों का ही है।

इस प्रकार के परस्पर विरोधी विचार ऐतिहासिकता की दृष्टि से अवश्य मनोरंजक हैं, लेकिन वे जाति और मनोविज्ञान के सम्बन्ध की सचाई तक पहुंचने में हमें मदद नहीं करते। इसके लिये हमें एक और भी अधिक वस्तुगत (वास्तविक) तरीके की, एक और भी अधिक सुनिश्चित विशेष विधि की आवश्यकता है, जो

यह निश्चय करने के लिये केवल आत्मपरक (भावपरक) निर्णयों पर ही आधारित न हो कि किसकी बौद्धिक सम्पत्ति उत्कृष्ट है अथवा सभ्यता के लिये बड़ा योगदान कौन सा है। हमें ऐसे सबूत की जरूरत है जो वैज्ञानिक रूप से ठीक हो, और जिसको वैज्ञानिक रूप से स्वीकार भी किया जा सके।

मनोवैज्ञानिकों ने एक ऐसा तरीका निकाला है, जो कुछ सदोष होते हुए भी इस काम के लिए बहुत लाभप्रद है। वह तरीका मनोवैज्ञानिक परीक्षण है। एक जर्मन की वैज्ञानिक खोज उच्चतर बौद्धिक स्तर की है, अथवा एक इटली निवसी की चित्रकला—इसका निर्णय करने के बजाय इस परीक्षण में यह विधान है कि हम जर्मन और इटली निवासी व्यक्तियों के समूह के सामने कुछ समस्याएं हल करने के लिए रखें और तब हम यह निश्चय कर सकते हैं कि कौन उन समस्याओं को अधिक शीघ्रता से तथा अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से हल करता है। यदि किसी को हमारे परिणामों पर सन्देह हो, तो वह उन्हीं अथवा अन्य परीक्षणों द्वारा, इस विषय का फिर अध्ययन कर सकता है। यदि उसके परिणाम हमारे परिणामों से मिलते हों तो हमारा विश्वास उनमें बढ़ता है, यदि न मिलते हों तो हमें अपना निर्णय तब तक स्थगित कर देना चाहिए जब तक कि और अन्वेषण इस बात का निर्णय करने में सहायक न हों कि कौन ठीक है। यदि योग्यता के देशीय अथवा स्वाभाविक (पैदायशी) भेदों की माप के लिये मनोवैज्ञानिक परीक्षण आदर्श उपकरण हों, तो उच्च और निम्न श्रेणी की जातियों के प्रश्न का निर्णय करने के लिये इतना ही काफी होगा। यह ठीक है कि कम से कम कुछ मनोवैज्ञानिकों और शिक्षकों द्वारा तथा अनेक साधारण व्यक्तियों द्वारा, बहुत समय तक जातियां इसी प्रकार की मानी जाती थीं। किन्तु अब हम जानते हैं कि वे पूर्ण नहीं कहे जा सकते। परीक्षणों द्वारा इन समस्याओं का सफल हल अनेक बातों पर निर्भर है जैसे परीक्षित व्यक्ति का पहला अनुभव और शिक्षा, परीक्षण की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में उसकी जानकारी की मात्रा, अधिक अंक या अच्छी सफलता प्राप्त करने का उसका उद्देश्य अथवा इच्छा, उसकी भावुकता, प्रयोगकर्त्ता के साथ उसका संबंध, उसका उस भाषा का ज्ञान जिसमें परीक्षण किया गया हो, आदि आदि तथा साथ ही परीक्षित व्यक्ति की अपनी क्षमता। इस प्रकार के कारण जब स्थिर रूप में विद्यमान हों, अर्थात् जब वे सभी परीक्षित व्यक्तियों के लिए वास्तव में समान हों, केवल तभी हमें यह परिणाम निकालने का अधिकार है कि परीक्षण में अधिक अंक प्राप्त करने वाले व्यक्ति कम अंक प्राप्त करने वालों की अपेक्षा स्वाभाविक गुणों में श्रेष्ठ हैं।

इससे यह तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि जब दो विभिन्न जातीय अथवा कौमी जनसमूहों का मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जा रहा हो, तब हमें उनके परिणामों का अर्थ समझने में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। विभिन्न परिस्थितियों में

रहने के कारण तथा संस्कृति, शिक्षा और दृष्टिकोण में असमानता के कारण, इस प्रकार के जनसमूहों के परीक्षण परिणाम बहुत अधिक भिन्न हो सकते हैं, इसलिये नहीं कि उनकी वंश-परम्परा असमान है, किन्तु इसलिये कि उनकी सामाजिक परिस्थिति असमान है। महान् फ्रेंच मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बिनेट जिसने सन् १९०५ में बुद्धि-परीक्षणों के प्रथम यन्त्र का विकास किया, अपनी प्रणाली के प्रयोग की इस कमी से परिचित था। उसने यह संकेत किया था कि स्वाभाविक विभिन्नाताओं को जानने के लिये उसके परीक्षणों का प्रयोग सफल रूप में केवल तभी किया जा सकता है जबकि परीक्षित व्यक्तियों अथवा समूहों को पर्याप्त रूप में समान सुविधाएं मिली हों। बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने बिनेट की इस बुद्धिमानी से भरी हुई सम्मति की उपेक्षा की, अथवा वे इसे भूल गए और अपनी सामग्री के द्वारा गलत नतीजे निकाल बैठे।

सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां

सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा व्यक्ति का अनुभव उसके परीक्षण-कार्य पर कई प्रकार से असर डाल सकता है। कुछ विशेष योग्यताओं और ज्ञान के अतिरिक्त जिनकी कि किसी खास समस्या को हल करने में आवश्यकता होती है, परीक्षण के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति भी महत्वपूर्ण कार्य करती है। इस बात का सबसे बड़ा उदाहरण उस परिस्थिति में मिलता है जिसका वर्णन अमेरिका के मनोवैज्ञानिक एस० एल० प्रेसी ने अपने 'मनोविज्ञान और नवीनतर शिक्षा' (१९३३) नामक ग्रंथ में किया है। एक अन्वेषक कुछ बच्चों का परीक्षण केण्टकी में एक पहाड़ी भाग में कर रहा था जहां उस समय शिक्षा की सुविधाएं दुर्लभ और खराब थीं। वह अमेरिका के संशोधित बिनेट मापयंत्र का प्रयोग कर रहा था जिसमें यह प्रश्न भी था—"यदि तुम किसी दूकान पर जाओ, और छह सेंट (एक सिक्का) की खांड खरीदो और क्लर्क को दस सेंट दो, तो तुम बदले में उससे कितने सेंट प्राप्त करोगे ?" एक बच्चे ने उत्तर दिया, "मेरे पास दस सेंट कभी नहीं थे, और यदि मेरे पास होते तो मैं उन्हें खांड के लिए खर्च नहीं करता, और बात यह है कि खांड वही तो है जो तुम्हारी माता तैयार करती है।" परीक्षक ने फिर पूछा : "यदि तुम अपने पिता की दस गाएं चरागाह में ले गए होते और उनमें से कुछ इधर-उधर चली जातीं, तो घर वापस लाने के लिए तुम्हारे पास कितनी गाएं रहतीं ?" बच्चे ने उत्तर दिया, "हमारे पास १० गाएं नहीं हैं किन्तु यदि हमारे पास इतनी गाएं होती और उनमें से मेरे द्वारा ६ खो जातीं, तो मैं घर लौटने का साहस ही न करता।" परीक्षक ने फिर अन्तिम बार पूछने का प्रयत्न किया : "यदि किसी स्कूल में १० बच्चे होते और उनमें से ६ बच्चे चेचक निकलने के कारण बाहर कर दिए गए होते, तो स्कूल में कितने बच्चे रहते?" इसका तत्काल यह उत्तर मिला, "कोई नहीं, क्योंकि शेष बच्चे भी चेचक लग जाने के भय से वहां न रहते।" परीक्षण की स्थिति में इस बात की प्रायः आवश्यकता होती है कि परीक्षित व्यक्ति की प्रतिक्रिया एक काल्पनिक वस्तु के प्रति इस प्रकार की हो मानो वह वस्तु वास्तविक है; यदि उसे इसका पूर्व अनुभव नहीं है अथवा उसने ऐसा करने का प्रशिक्षण (ट्रेनिंग) प्राप्त नहीं किया है, तो उसके लिये परीक्षक के प्रश्न का ठीक उत्तर देना

असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। इससे यह सिद्ध होना जरूरी नहीं है कि ऐसी स्थिति में जो परीक्षित व्यक्ति की रुचि और आवश्यकता के अनुकूल है, वह १० में से ६ घटाने में असमर्थ है।

परीक्षण स्थिति में अन्य व्यक्तियों के साथ प्रतियोगिता के कार्य पर भी उन मानदण्डों और मनोवृत्तियों का प्रभाव पड़ता है जो एक विशेष समाज में विकसित हो जाती हैं। प्रोफेसर एस० डी० पोरटियस ने अपने 'अविकसित जाति का मनोविज्ञान' (१९३१), नामक ग्रंथ में एक मनोरंजक अनुभव का उल्लेख किया है जो उन्हें आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के एक समूह का मनोवैज्ञानिक परीक्षण करते समय हुआ था। जिन परीक्षणों का उसने प्रयोग किया, वे भूल-भुलैयों, व्यूह-चक्रों से सम्बन्ध रखते थे और समस्या यह थी कि उस व्यूह में से उस रास्ते को ढूंढ़ा जाए जिससे कि सफलतापूर्वक बाहर पहुंचा जा सके। प्रत्येक परीक्षित व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह इस कार्य को दूसरों की बिना किसी प्रकार की सहायता के अपने आप ही करेगा। आस्ट्रेलिया के उन निवासियों के लिए यह स्थिति बड़ी अजीब थी। वे अपनी समस्याओं का हल सामूहिक रूप से सोचने के आदी हैं। केवल इतना ही नहीं कि आदिवासियों के जीवन की प्रत्येक समस्या पर वयोवृद्ध पुरुषों की सभा में बहस होती है और उसका निर्णय होता है, बल्कि प्रत्येक समस्या पर तब तक बहस और विचार करते रहते हैं जब तक कि वे एक सर्वसम्मत निर्णय पर नहीं पहुंच जाते। परीक्षित व्यक्ति इस बात से अक्सर परेशान होते थे कि परीक्षक उन्हें उस समय कोई सहायता नहीं देता था जबकि वे उस भूल-भुलैया की समस्या को हल करने में कठिनाई अनुभव करते थे। इन आदिवासियों के एक विशेष समूह के विषय में यह बात और भी सचाई के साथ चरितार्थ हो रही थी जिसने कि इस मनोवैज्ञानिक को अभी हाल में ही अपनी जाति का 'सगा भाई बना लिया था' और वे यह समझ नहीं पा रहे थे कि वह उनकी सहायता क्यों नहीं करता है। इस प्रकार की मनोवृत्ति के कारण स्वाभाविक रूप से उस कार्य में बहुत देरी हुई क्योंकि परीक्षित व्यक्ति परीक्षक की स्वीकृति अथवा सहायता प्राप्त करने के लिए अपने कार्य में बार-बार रुकते थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि परीक्षण-अंकों पर भी आनुपातिक रूप से इसका बुरा प्रभाव पड़ा।

इस लेखक ने भी इस प्रकार की प्रतियोगिता के प्रति ऐसी ही उदासीनता, जो हमारे समाज में सामान्य रूप से पाई जाती है, उस समय देखी थी जब यह याकिमा जाति के लोगों के मध्य में अन्वेषण कर रहा था—याकिमा अमेरिकावासी इंडियनों की एक जाति है, जो युनाइटेड स्टेट्स के पश्चिमी समुद्र तट पर वाशिंगटन रियासत में रहती है। इन परीक्षणों में क्रियात्मक परीक्षणों का प्रयोग किया

154306

गया था जिनमें भाषा के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है और इसमें यह कार्य करना पड़ता है कि लकड़ी के विभिन्न आकार के टुकड़ों को एक तख्ते में बने हुए उसी प्रकार के सूराखों में रख दिया जाए। इस परीक्षण में अंक इस आधार पर दिए जाते हैं कि इस कार्य को कितनी शीघ्रता के साथ पूरा किया गया है तथा कितनी अशुद्धियां की गई हैं। परीक्षार्थियों से कह दिया जाता है कि वे जल्दी से जल्दी उन टुकड़ों को ठीक स्थान पर रख दें। किन्तु इन इंडियन बच्चों ने कभी भी जल्दी नहीं की। काम को जल्दी करना वे जरूरी नहीं समझते। हमारी संस्कृति शीघ्रता को प्रधानता देती है और कार्यों को कम से कम समय में समाप्त करना सिखाती है। इण्डियन बच्चों की ऐसी मनोवृत्ति नहीं बनी थी। वे अपने कार्य को धीरे-धीरे सोच-समझकर कर रहे थे और उनमें ऐसी कोई उत्कट व्यग्रता नहीं थी जो अमेरिकन बच्चों में प्रायः पाई जाती है। परिणाम स्वरूप इंडियन बच्चों ने इन परीक्षणों को पूरा करने में कहीं अधिक समय लगाया, यद्यपि उन्होंने अपने प्रतियोगी श्वेत अमेरिकन बच्चों की अपेक्षा कुछ कम गलतियां कीं।

इस लेखक ने भी इसी प्रकार का परीक्षण दक्षिणी डाकोटा रियासत के डाकोटा (सिओक्स) इंडियनों पर किया था। वहां किसी प्रश्न का उत्तर उन पुरुषों के सामने देना जो उस प्रश्न का उत्तर नहीं जानते, ठीक नहीं समझा जाता। यदि कोई इस प्रकार उत्तर देता है तो या तो उसके इस कार्य को ढोंग समझा जाता है अथवा यह माना जाता है कि वह दूसरों को लज्जित करना चाहता है। अतः सारे समाज द्वारा उसकी निन्दा की जाती है। इन इंडियन बच्चों में भी यह विश्वास जम गया है कि किसी प्रश्न का तब तक उत्तर देना गलत है जबतक कि इस बात का पूर्ण निश्चय न हो जाए कि उत्तर बिल्कुल ठीक है। जिन मनोवैज्ञानिकों ने इन बच्चों का बिनेट माप यंत्र द्वारा परीक्षण किया है, उन्होंने देखा है कि वे कभी उत्तर का अनुमान नहीं लगाते, यदि उन्हें उत्तर के ठीक होने का विश्वास नहीं होता है, तो वे अनिश्चित काल तक चुप रहे आते हैं। इससे भी उनके प्राप्तांकों में कमी आ जाती है, क्योंकि कभी-कभी अनुमान भी ठीक हो सकता है और ऐसे उत्तर के भी अंक दिए जाते हैं जो आंशिक रूप में ठीक होता है।

प्रोफेसर एस० ई० आश नामक एक अन्य मनोवैज्ञानिक का मत है कि ऐरीजोना नामक स्थान के होपी इंडियन बच्चे एक दूसरे के साथ प्रतियोगिता में भाग लेनी स्वीकार नहीं करते। एक स्कूल अध्यापिका ने उनसे प्रतियोगिता कराने का एक विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रयत्न किया। उसने श्यामपट पर गणित के कई प्रश्न लिख दिए और बच्चों को पंक्ति में खड़ा कर दिया। प्रत्येक बच्चे के सामने एक प्रश्न लिखा हुआ था और उसने उनको यह आज्ञा दी कि प्रश्न हल करने के तुरन्त पश्चात् पीठ मोड़ कर खड़े हो जाएं। उस अध्यापिका ने यह देखा कि अपने सवाल

को हल करने के पश्चात् प्रत्येक बच्चा अपनी पंक्ति के दूसरे बच्चों की ओर यह जानने के लिये देखता था कि वे कितनी प्रगति कर रहे हैं, और जब उन सबने अपने प्रश्न हल कर लिए, केवल तभी वे एक साथ पीछे की ओर मुड़े। इस मनोवृत्ति से भी अंकों में कमी आ जाती है, विशेषकर समूह-परीक्षणों के प्रयोग में, जो कई व्यक्तियों को मिलाकर एक ही समय किया जाता है।

इस प्रसंग में अन्तिम उदाहरण के रूप में नरविज्ञान विशेषज्ञ मारगरेट मीड के अनुभव का उल्लेख किया जा सकता है जो उन्होंने समोआ वासी बच्चों के साथ किया था और जिसकी सूचना उन्होंने अपने 'कमिंग ऑफ एज इन समोआ' नामक लेख में दी थी। वह बिनेट परीक्षण का प्रयोग कर रही थीं जिसमें एक समस्या 'गेंद और खेत' की है। एक गेंद एक गोल खेत में खो जाती है और परीक्षार्थी का कार्य यह होता है कि वह उस रास्ते को ढूंढ़े जिसके सहारे चलकर गेंद को पाया जा सके। समोआ निवासी इन बच्चों ने सर्वश्रेष्ठ मार्ग को ढूंढ़ने के बजाय इस अवसर का प्रयोग एक सुन्दर आकृति बनाने में किया। उनकी सौन्दर्य-प्रियता उनको दिए हुए प्रश्न को हल करने की इच्छा की अपेक्षा स्पष्ट रूप से अधिक बल-वती थी।

ये सभी उदाहरण इस संभावना की ओर संकेत करते हैं कि व्यक्ति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि यह निर्धारित करती है कि वह परीक्षण की स्थिति में साधारण रूप से इस प्रकार पहुंचता है जिससे कि उसके परीक्षण अंकों पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इस सर्वमान्य प्रभाव के अतिरिक्त किसी समाज विशेष का सदस्य होने के कारण एक व्यक्ति क्या सीखता है और क्या नहीं सीखता है—यह बात भी अनेक खास तरीकों में उसके कार्य को प्रभावित कर सकती है। कुछ थोड़े से ठोस उदाहरण इस विषय को और भी स्पष्ट बनाने में सहायक हो सकते हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में जो मनोवैज्ञानिक परीक्षण बहुत प्रचलित है, वह 'राष्ट्रीय बुद्धि-परीक्षण' है। इसका एक अंश इस प्रकार है कि इसमें परीक्षार्थी के सामने एक शब्द रखा जाता है जिसके साथ पीछे पांच शब्द और होते हैं। इन पांच शब्दों में से ऐसे दो शब्दों के नीचे परीक्षार्थी को लकीर खींचनी पड़ती है जिनका पहले शब्द से जरूरी संबंध होता है। उदाहरणस्वरूप एक पंक्ति इस प्रकार है:

भीड़ (समीपता, खतरा, धूल, उत्तेजना, संख्या)। इनमें ठीक उत्तर **समीपता** और **संख्या** हैं क्योंकि केवल ये ही दो भीड़ की अवश्यंभावी विशेषताएं हैं। अमेरिका के दो मनोविज्ञान वेत्ताओं, फिट्ज़जीराल्ड और लुडमैन ने दक्षिणी डाकोटा में इसी राष्ट्रीय बुद्धि परीक्षण द्वारा इंडियनों का अध्ययन किया था। विशेष रूप से इस प्रश्न में इंडियन बच्चों ने यह गलती की कि उन्होंने **खतरा** और **धूल** के नीचे लकीर खींची और कई बच्चों ने **उत्तेजना** के नीचे भी लकीर खींची।

इन इंडियन बच्चों के लिए भीड़ का अर्थ प्रायः खतरा, धूल और उत्तेजना होता है। इन लेखकों ने यह बताया है कि इससे हमें यह संकेत मिलता है कि एक इंडियन अपनी परिस्थिति और अनुभव के कारण उन उत्तरों को तर्कसंगत और ठीक समझता है।

राष्ट्रीय बुद्धि परीक्षण का एक दूसरा भाग इस प्रकार है कि उसमें कई अपूर्ण वाक्य होते हैं और परीक्षार्थी का कार्य छूटे हुए शब्द को उसमें भरना होता है। इस प्रकार का एक वाक्य यह है:—"गिर्जाघरों और पुस्तकालयों में......रहनी चाहिए "। इसका वास्तव में ठीक उत्तर **खामोशी** (शांति) है। किन्तु जिस किसी ने भी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में नीग्रो गिर्जाघर देखा है वह जानता है कि वहां **शांति** का न तो नियम है न आदर्श है। वहां पूजा करने वालों से यह आशा की जाती है कि वे पूजा कार्य में लगन के साथ भाग लें और उनके शब्द सुनाई दें। यदि शांति रही, तो बहुत से गिर्जाघरों में ऐसे पूजा कार्य को असफल समझा जाएगा। अपने अनुभव के आधार पर दक्षिणी भाग के नीग्रो बच्चे इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षाकृत ठीक प्रकार से नहीं दे सकेंगे।

सामाजिक और शिक्षा संबंधी पृष्ठभूमि जिन विभिन्न रूपों में परीक्षण-परिणामों को प्रभावित करती है उनमें से एक अत्यन्त स्पष्ट तरीका भाषा का है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक परीक्षण जो सर्वसाधारण प्रयोग में आते हैं, जिनमें बिनेट के परीक्षण भी सम्मिलित हैं, मौखिक होते हैं। परीक्षार्थी के सामने जो समस्याएं रखी जाती हैं उनको ठीक प्रकार से हल करने के लिए यही काफी नहीं है कि परीक्षार्थी पूछे हुए प्रश्नों को ठीक प्रकार से समझ लें तथा उनका हल निकालने के पश्चात् ठीक उत्तर देदें, बल्कि उसमें यह योग्यता भी होनी चाहिए कि समस्या के हल तक पहुंचने के लिए वह सफलतापूर्वक शब्दों का कुशल प्रयोग कर सके। इनमें से बहुत से परीक्षणों में भाषा की सुविधा इतनी महत्वपूर्ण है कि एक मनोवैज्ञानिक परीक्षार्थी के बौद्धिक स्तर का ठीक-ठीक अनुमान केवल यह जानकार लगा सकता है कि इसका शब्द ज्ञान का विस्तार कितना है। इस तथ्य के आधार पर लोग प्रारंभ में इस परिणाम पर पहुंचे थे कि ये परीक्षण उन बच्चों के लिए अनुचित हैं जो विदेशों में उत्पन्न हुए हैं अथवा जो (उदाहरण स्वरूप संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के इंडियन लोग) उस भाषा की समुचित योग्यता नहीं रखते जिसके माध्यम द्वारा परीक्षण किया जा रहा है। चाहे वे उस भाषा में अपेक्षाकृत सुगमतापूर्वक बोलते हों और उसे प्रयोग में लाते हों, फिर भी वे टोटे में रहते थे, यदि वह भाषा उनकी मातृभाषा न हो अथवा वे द्विभाषी क्षेत्र के निवासी हों।

इसका प्रदर्शन बहुत वर्ष पहले हुआ था। उन वेल्स के बच्चों ने जो केवल अंगरेजी ही बोलते थे बिनेट मापयंत्र पर उन बच्चों की अपेक्षा अधिक अंक प्राप्त

किए थे जो वेल्स और अंगरेजी दोनों भाषायें बोलते थे। बेलजियम में वे बालून बच्चे जो केवल फ्रेंच बोलते थे उन फ्लेमिश बच्चों की अपेक्षा अच्छे थे जो फ्रेंच और फ्लेमिश दोनों भाषाएं बोलते थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इटेलियन माता-पिताओं के बच्चे जो अपने घरों में इटैलियन भाषा बोलते थे, उन बच्चों की अपेक्षा हीन थे जो केवल अंगरेजी बोलते थे। कनाडा और ओंटारियो के वे इंडियन जो केवल अंगरेजी बोलते थे उन दूसरे व्यक्तियों से अच्छे थे जो दो भाषाएँ बोलते थे। दूसरे-जन-समूहों के विषय में भी यही परिणाम पाया गया है। इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि द्विभाषी होने से निश्चित अथवा स्थायी बुद्धि मन्दता हो जाती है। इसमें सीधी सादी बात केवल इतनी ही है कि एक छोटे बच्चे का शब्द ज्ञान सीमित होता है और यदि वह दो भाषाओं के शब्द याद करता है तो वह किसी भाषा के भी अधिक शब्द याद नहीं कर सकता है। भाषी होने से हानि भी है और निश्चित लाभ भी, किन्तु कालान्तर में यह हानि इतनी बढ़ जाएगी कि उसकी पूर्ति लाभों द्वारा नहीं हो सकेगी।

भाषा के प्रभाव की समस्या को समझने का एक दूसरा तरीका यह है कि हम दो जातीय वर्गों की तुलना दोनों प्रकार से करें—भाषा परीक्षणों द्वारा और क्रियात्मक परीक्षणों द्वारा। क्रियात्मक परीक्षणों में किसी भी भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है। कार्य इस प्रकार का हो सकता है कि परीक्षार्थी सरल ज्यामिति की समस्याओं को हल करे, अथवा एक (भूल-भुलैया) व्यूह में मार्ग ढूंढ़े, अथवा मनुष्य का चित्र खींचे, अथवा एक अपूर्ण चित्र की पूर्ति करे, आदि।

जब ऐसे परीक्षणों का प्रयोग द्विभाषी बच्चों के समूहों पर किया जाता है, तो वे साधारण भाषा-परीक्षणों की अपेक्षा प्रायः अनिवार्य रूप में कहीं अधिक अच्छे नतीजे दिखाते हैं। इसका परीक्षण कई बच्चों के विषय में किया जा चुका है जिनमें कई विदेशों से आकर बसे हुए जन समूह तथा यूनाइटेड स्टेट्स और कनाडा में रहने वाले अमेरिकन इंडियन हैं।

इसका यह अर्थ नहीं है कि भाषा ही एकमात्र शैक्षणिक और सामाजिक तत्व है जो परीक्षण-तुलनाओं में काम आती है। ऊपर दिए हुए उदाहरण उन अनेक विभिन्न तरीकों की ओर संकेत करते हैं जिनमें परीक्षण परिणामों पर प्रभाव पड़ सकता है। परीक्षण के प्रारंभिक दिनों में बहुत से मनोविज्ञान वेत्ताओं का यह विश्वास था कि भाषा के कारण उत्पन्न असुविधा को दूर करना संस्कृति के प्रभाव को दूर करने के समान है। उदाहरणस्वरूप मिनेसोटा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फ्लोरस एल-गुड्एनफ ने, जो एक मनोविज्ञान वेत्ता थे, एक क्रियात्मक परीक्षण निकाला था जिसमें मनुष्य की तस्वीर बनाने का कार्य था। इस तस्वीर के सौंदर्य गुण के आधार पर अंक नहीं दिये जाते थे, बल्कि इस आधार पर कि इसमें जरूरी

बातों को अधिकतम संख्या में शामिल किया गया है या नहीं, और अंगों के अनुपात पर उचित ध्यान दिया गया है या नहीं। वह इस परीक्षण को संस्कृति मुक्त समझती थी। अर्थात् परीक्षार्थियों की पूर्वकालीन पृष्ठभूमि और अनुभव से मुक्त समझती थी, अतः बुद्धि के स्वाभाविक भेदों को मापने के योग्य समझती थी। उसने इस परीक्षण द्वारा सन् १९२६ ई० में कुछ अध्ययन किया था और उसने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में विदेशों से आकर बसे हुए विभिन्न जन समूहों के निश्चित बुद्धि-भेदों तथा श्वेत और नीग्रो व्यक्तियों के बुद्धि भेदों की सूचना दी थी। तब से जो वर्ष बीते हैं उनमें अनेक अन्वेषकों ने इस परीक्षण का प्रयोग किया है और वे यह दिखाने में सफल हुए हैं कि प्राचीन विश्वास के विपरीत परिणामों पर अवश्य ही पूर्व अनुभव के अनेक रूपों का प्रभाव पड़ता है। प्रोफेसर गुडऐनफ ने अब स्वयं इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है और बहुत ईमानदारी तथा साहस के साथ अपनी पहली त्रुटि की ओर संकेत किया है। सितम्बर १९५० के 'मनोविज्ञान' इश्तहार के अंतर्गत 'बच्चों की चित्रकलाओं के मनोविज्ञान का अध्ययन' नामक लेख में उसने डेलबी हौरिस के साथ लिखते हुए अपना यह मत प्रकट किया है :—

> संस्कृति-मुक्त परीक्षण की खोज—चाहे वह बुद्धि का हो, चाहे कलात्मक योग्यता का हो, चाहे वैयक्तिक—सामाजिक विषशेताओं का हो, अथवा किसी अन्य मापयोग्य लक्षण का हो—भ्रमपूर्ण है और यह सरल मान्यता भी कि कथित आवश्यकताओं से मुक्ति ही किसी परीक्षण को सभी समूहों के लिये समान रूप में ठीक बना देती है, अब अधिक मान्य नहीं है।

उसने आगे यह भी कहा है कि उसका अपना अध्ययन जिसके आधार पर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में विदेशों से आए हुए बच्चों में पाई जानेवाली विभिन्नताओं की सूचना दी थी निश्चित रूप से इस नियम का अपवाद नहीं है, और यह लेखिका अब उसके लिए क्षमा याचना करती है।

यदि प्रत्येक परीक्षण संस्कृति बद्ध है अर्थात् पूर्व शिक्षा, प्रशिक्षण, (ट्रेनिंग) और अनुभव के पूर्व सम्मिश्रण द्वारा प्रभावित है तो क्या इन परीक्षणों का प्रयोग जातियों की बुद्धि सम्बन्धी भिन्नताओं अथवा समानताओं के विषय में कोई भी ज्ञान करा सकता है? यदि हम परीक्षण परिणामों में पैतृक प्रभावों को परिस्थिति जन्य प्रभावों से अलग नहीं कर सकते, तो क्या इस परीक्षण-प्रणाली का हमारी समस्या के साथ कोई भी संबंध रह जाता है? हम वास्तव में यह बात न्यायपूर्वक कह सकते हैं कि बुद्धि के जातीय भेद परीक्षणों द्वारा नहीं दिखाये जा सकते। इसके कारण पहिले बताए जा चुके हैं। हम कम से कम यह कह सकते हैं—यह सिद्ध नहीं हुआ। क्या यही सब कुछ है जो हम कह सकते हैं? अथवा क्या ऐसा

कोई और अधिक निश्चयात्मक तरीका है जिससे इन परीक्षणों का प्रयोग हमारे द्वारा उठाए जाने वाले सवालों के हल करने में किया जा सके ?

हमें इस समस्या पर कुछ भिन्न दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। यह सत्य है कि दो विभिन्न समूहों द्वारा जो अंक प्राप्त किए जाते हैं उनका कारण पैतृक और परिस्थिति जन्य तत्वों का मिलाव है जो एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। इन समूहों में से दूसरे की अपेक्षा एक ही हीनता का कारण या तो हीन वंश-परम्परा है या हीन परिस्थिति है अथवा दोनों हैं। मान लीजिये कि अब हम दोनों परिस्थितियों को एक दूसरे के अधिक समान बनाते हैं और जहां तक संभव हो सकता है बिल्कुल एक-सा बनाते हैं। परिस्थितियों के अधिक समान हो जाने पर यदि परीक्षण अंकों का अन्तर कम होने लगे, और परिस्थितियों के सब प्रकार से पूर्ण रूप से समान होने पर यदि परीक्षण-अंकों का अंतर पूर्ण रूप से समाप्त हो जाए तब हमें इन अन्तरों के स्पष्टीकरण के लिये पितृ-परम्परा की अपेक्षा परिस्थितियों के पक्ष में प्रबलतर तर्क मिल जाता है। ये परिणाम हमें क्या दिखाते हैं ?

परिस्थिति के परिवर्तनों का प्रभाव

जो परीक्षण पेरिस अथवा न्यूयार्क के बच्चों में पाए जाने वाले भेदों को निर्धारित करने में लाभप्रद सिद्ध हुआ हो, यदि उसी का प्रयोग मोजाम्बिक अथवा न्यूगिनी के बच्चों पर किया जाए, तो हम द्वितीय वर्ग से प्रथम वर्ग के समान कार्य की आशा नहीं कर सकते । यह स्पष्ट ही है, किन्तु दुर्भाग्य से इसे सदैव ठीक माना नहीं गया है । ऊपर दिए हुए उदाहरणों से ज्ञात होता है कि कितने प्रकार से इन समूहों की विभिन्न पृष्ठभूमि, प्राप्त परीक्षण अंकों को प्रभावित करती है । किन्तु ऐसे कई देश हैं जिनमें विभिन्न जातियों के समूह साथ-साथ रहते हैं और पहले-पहल देखने पर यह एक साधारण सी बात मालूम होती है कि इन समूहों को तुलना के लिये आधार बनाया जा सकता है । उदाहरण स्वरूप संयुक्त राष्ट्र अमरीका में ऐसे व्यक्ति रहते हैं जो मूल रूप में स्केण्डीनेविया, इटली, चीन के निवासी हैं, अथवा नीग्रो हैं, अथवा अमेरिकन इंडियन हैं और सबके सब अमेरिकन वातावरण में रह रहे हैं । क्या हम अनुमान नहीं लगा सकते कि जब उनकी सबकी एक-सी ही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है और सबको समान रूप में शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी सुविधाएं प्राप्त हैं तो उनके परीक्षण परिणामों में जो अंतर पाया जाता है, उसका कारण उनकी वंश-परम्परा से आई हुई शक्तियों का ही अंतर है ?

दुर्भाग्य से, ऐसी बात नहीं है । उदाहरण के रूप में अमरीका का इंडियन प्रायः आसपास के समाज से अलग-सा रहता है; वह प्रायः दूसरे ही स्कूलों में पढ़ने जाता है, वह भिन्न प्रकार का जीवन व्यतीत करता है, वह अंगरेजी बोलता है, लेकिन प्रायः बहुत अच्छी अंगरेजी नहीं बोलता, सामान्यरूप से उसका आर्थिक स्तर निम्नकोटि का है । यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में अमरीका के नीग्रो की हालत स्पष्ट रूप में सुधर गई है, फिर भी उनमें से बहुत से विशेष बाधाओं से पीड़ित हैं । उनका आर्थिक स्तर भी औसतन सफेद अमरीकावासियों की अपेक्षा कहीं अधिक हीन है; जिन स्कूलों में नीग्रो शिक्षा प्राप्त करता है, वे भी पहले निश्चित रूप से निम्नकोटि के रहे हैं, और वे कुछ हद तक आज भी निम्नकोटि के हैं; उसके लिए कुछ विशेष प्रकार की नौकरी प्राप्त करना तथा अमरीका के जीवन में पूर्ण रूप से भाग लेना अधिक कठिन है ।

इस बात को एक बार समझ लेने पर यह समझना आश्चर्यजनक नहीं रह जाता कि अमेरिकन इण्डियन और नीग्रो चाहे वे नवयुवक हों अथवा बच्चे औसत रूप में सफेद अमरीकावासियों की अपेक्षा कम परीक्षण अंक प्राप्त करते हैं। लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह अंतर औसत रूप में मिलता है। कुछ ऐसे नीग्रो व्यक्ति भी हैं जो अनेक श्वेत अमरीकावासियों की अपेक्षा अधिक अंक प्राप्त करते हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कभी-कभी नीग्रो व्यक्तियों के पूरे के पूरे समूह परीक्षणों में उन श्वेत अमरीकावासियों के समूहों की अपेक्षा अच्छा कार्य करते हैं जिनसे कि उनकी तुलना की जाती है।

प्रथम विश्व युद्ध के समय जब पहले-पहल अमरीकी फौज के रंगरूटों का, जिनमें बहुत से नीग्रो भी शामिल थे, मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया गया तो लोगों में इस बात से बड़ी दिलचस्पी पैदा हुई। परीक्षा के परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया कि दक्षिण के रहनेवाले नीग्रो लोगों ने जहां शिक्षा की ओर आर्थिक असुविधाएं अधिक थीं उत्तर के रहने वाले नीग्रो की अपेक्षा जहां इस प्रकार की असुविधाएं थीं तो सही, किन्तु काफी कम थीं, औसत रूप में अवश्य ही कम अंक प्राप्त किए। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उत्तरी अमरीका के रहनेवाले नीग्रो ने दक्षिणी अमरीका के श्वेत व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक अंक प्राप्त किये। दोनों ही प्रकार के बुद्धि-परीक्षण में यही बात सच्ची सिद्ध हुई—एक परीक्षण भाषा के आधार पर था और दूसरा क्रियात्मक अथवा भाषा को छोड़कर। कम से कम कुछ मनोवैज्ञानिकों को यह प्रतीत होने लगा कि इन परीक्षणों में सफलता का निर्णय करने के लिये चमड़ी का रंग, उन परिस्थितियों की अपेक्षा जो किसी व्यक्ति को आवश्यक योग्यताएं प्राप्त करने के लिए मिलती हैं, कम महत्वपूर्ण है।

इस सम्बन्ध में और भी प्रमाणों को इकट्ठा किया गया। अमरीका के दो मनोवैज्ञानिकों—जोसेफ पीटरसन और लिले एच० लेनियर ने इस विषय का महत्व समझा कि नीग्रो और श्वेत अमरीकी व्यक्तियों की तुलना केवल उन्हीं परिस्थितियों में नहीं करनी चाहिए जिनमें बहुत भिन्नताएं हैं, बल्कि उन परिस्थितियों में भी करनी चाहिए जो लगभग एक सी ही हैं। 'मेण्टल मेजरमेण्ट मोनोग्राफ्स', १९२९ नामक ग्रंथ में एक लेख में उन्होंने लिखा:—

> किसी विशेष स्थान में और किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में किसी जाति में जो भेद पाये जाते हैं उनकी विश्वसनीयता जानने की एक उपयोगी विधि यह है कि हम विभिन्न परिस्थितियों म से इन भेदों का प्रतिनिधित्व करने वाले नमूने इकट्ठे करें और विभिन्न परिणामों की इस दृष्टि से तुलना करें जिससे यह निश्चय किया जा सके कि वे कौन से कारण हैं जो एक अथवा दूसरी जाति के पक्ष में लगातार अंतर पैदा करते हैं।

इस तर्क के आधार पर उन्होंने विभिन्न नगरों में श्वेत और नीग्रो बच्चों के साथ कई मनोवैज्ञानिक परीक्षण किए। इन नगरों में नैशविल (जो टैनेसी के दक्षिणी प्रदेश में हैं और जहां नीग्रो और श्वेत बच्चे भिन्न-भिन्न स्कूलों में जाते हैं) और न्यूयार्क (जहां सभी बच्चों के लिए संयुक्त पब्लिक स्कूल की प्रणाली है) भी शामिल हैं। इन परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया कि नैशविल नगर के श्वेत बच्चे नीग्रो बच्चों की अपेक्षा स्पष्ट रूप में बढ़कर थे जबकि न्यूयार्क नगर के दो जाति समूहों के बच्चों में खास फरक नहीं था। इस प्रकार हमें यह एक और प्रमाण इस सिद्धान्त के पक्ष में मिलता है कि जब परिस्थितियां समान होती हैं तो परीक्षण परिणाम भी समान होते हैं।

कभी-कभी एक ही जाति के व्यक्तियों के परीक्षण अंकों में काफी अन्तर पाया जाता है, जो परिस्थितियों के भेद के कारण होता है जैसे एक ओर तो टेनेसी के ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले नीग्रो के समूहों का औसत बौद्धिक भाज्यफल ५८ था, और दूसरी ओर लास एँजिल्स, कैलीफोर्निया के नीग्रो बच्चों का औसत बौद्धिक भाज्यफल १०५ था। सारी श्वेत जाति के लिये १०० बौद्धिक भाज्यफल की आशा की जाती है। इस नियम से यह निश्चित मानदण्ड अथवा आदर्श है जिसके साथ इन परिणामों की तुलना की जाती है। टेनेसी के ग्रामीण क्षेत्र के हीन वातावरण में नीग्रो बच्चों का परीक्षणांक इस मानदंड से काफी नीचे चला जाता है और लास एँजिल्स जैसे बड़े शहर में अच्छे वातावरण के कारण नीग्रो बच्चों का परीक्षणांक सामान्य बौद्धिक भाज्यफल से भी कुछ थोड़ा-सा अधिक बढ़ जाता है। यह एक महत्वपूर्ण परिणाम है और इसकी पेचीदगी स्वाभाविक शक्तियों में पाए जानेवाले तथाकथित जातीय भेदों में स्पष्ट दिखाई देती है।

इन परिणामों का एक दूसरा जवाब भी संभव है जो अवश्य विचारणीय है। वे नीग्रो जो न्यूयार्क, लास एँजिल्स तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उन अन्य प्रदेशों में रहते हैं जो दक्षिण में नहीं हैं, अधिकांश रूप में दक्षिण से आए हैं। इस कथन का तात्पर्य यह है कि या तो वे स्वयं अथवा उनके कुटुम्ब पहले किसी दक्षिणी प्रदेश में रहते थे जहां नीग्रो लोगों का सदैव सबसे बड़ा जमाव रहा है और जहां अफरीकी गुलाम प्रायः लाए जाया करते थे। किसी कारणवश उन्होंने अपने निवास-स्थलों को छोड़ दिया और वे उत्तर की ओर चले गए। इस प्रकार के देशान्तर-गमन में प्रायः यह देखा गया है कि अपने स्थान को छोड़ने की भावना उन्हीं व्यक्तियों में पाई जाती है जिनमें अधिक शक्ति और कार्यारम्भ करने की क्षमता होती है, जिनमें नवीन वातावरण के योग्य बनने की अधिक सामर्थ्य होती है और जिनमें संभवतया श्रेष्ठ बुद्धि होती है। इसके विपरीत कम बुद्धिवाले व्यक्ति पीछे रह जाते हैं। अतः यह अनुमान प्रायः लगाया जाता है कि कुछ चुने हुए व्यक्ति ही

देशान्तर गमन करते हैं। इस अनुमान के आधार पर उत्तरी नीग्रो व्यक्तियों द्वारा बौद्धिक परीक्षणों में अधिक अंक प्राप्त करने का कारण यह नहीं है कि उन्होंने अच्छे वातावरण में प्राप्त होनेवाली सुविधाओं का लाभ उठाया, बल्कि यह है कि वे स्वभावतः प्रारंभ से ही अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक तेज थे। इसका प्रमाण यह है कि देशान्तर गमन द्वारा उन्होंने इसे सिद्ध कर दिया था। यदि वास्तव में कुछ चुने हुए विशेष व्यक्ति ही देशान्तर गमन करते हैं तो टेनेसी के नीग्रो लोगों की अपेक्षा न्यूयार्क के नीग्रो लोगों की विशेषता के कारण परिस्थिति का प्रभाव नहीं माना जा सकता।

कुछ चुने हुए व्यक्तियों के देशान्तर गमन के पक्ष में जो तर्क दिया जाता है वह अधिक संतोषजनक नहीं है। विशिष्ट व्यक्तियों को ही देशान्तरगमन क्यों करना चाहिए? क्या यह अनुमान भी उतना ही न्यायोचित नहीं कि जो व्यक्ति जीवन में सफल होते हैं, जिन्होंने अपने समाज में उच्च स्थिति और पद प्राप्त किए हैं, जिन्होंने सम्पत्ति संग्रह कर ली है, जो नेता हैं वे संभवतया उसी स्थान पर रहना चाहेंगे जहां वे पहले से ही हैं? क्या यह संभव नहीं कि जो असफल हो गए हैं, जो अपनी जड़ें नहीं जमा सके हैं, जिन्हें नौकरी नहीं मिली है, वे ही अधिक हरे-भरे चरागाहों की खोज करने के लिये सबसे अधिक इच्छुक होंगे? क्योंकि इस विषय के दोनों ही पक्षों के सम्बन्ध में समान रूप से तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं, अतः यह आवश्यक है कि देशान्तर गमन और बुद्धि के संबंध के विषय में वास्तविक और निश्चित तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किया जाए।

१९३४ और १९३५ में जो अन्वेषण हुए, उनमें यह प्रयत्न किया गया था। सबसे पहला प्रश्न जिस पर विचार किया गया यह था कि मनुष्य देशान्तर गमन क्यों करते हैं? देशान्तर गमन करनेवाले व्यक्तियों के साथ अथवा उनके कुटुम्बियों के साथ भेंट करके जो पूंछतांछ की गई उससे यह ज्ञात हुआ कि उनके देशान्तर गमन के कई कारण थे। देशान्तर गमनकारी व्यक्तियों में से कुछ लोग उत्तर की ओर आर्थिक दशा को उन्नत करने की आशा से अथवा अच्छी शिक्षा प्राप्त करने की आशा से भए थे। संभवतः ये अधिक बुद्धिमान् व्यक्ति थे। किन्तु दूसरे व्यक्तियों ने देशान्तरगमन इस कारण किया कि उनको दक्षिण में कोई काम नहीं मिलता था, अथवा क्योंकि वे वहां के कानून के कारण मुसीबत में थे, गिरफ्तार होने की शंका थी, अथवा क्योंकि उत्तर में पहले से ही जमे हुए उनके किसी मित्र अथवा रिश्तेदार ने उन्हें निमंत्रण द्वारा बुला लिया था। इन उदाहरणों में से किसी में भी इस बात का संकेत नहीं मिलता है कि यह देशान्तर गमन बुद्धि की विशेषता के कारण हुआ था। सच बात तो यह है कि देशान्तर गमन के कई कारण होते हैं। अतः बुद्धि आदि किसी एक ही कारण को पृथक रूप में इसके लिये उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

इस समस्या को सुलझाने का दूसरा प्रयत्न अधिक सीधा है। जिन व्यक्तियों ने देशान्तर गमन किया था उन्होंने उससे पूर्व दक्षिण में ही शिक्षा पाई थी, अतः उनकी प्रतियोगिता उस समय उनके साथ हुई थी जिन्होंने देशांतर गमन नहीं किया था। यदि यह सिद्धांत ठीक है कि कुछ चुने हुए विशेष व्यक्ति ही देशान्तर गमन करते हैं तो उनके द्वारा स्कूलों में प्राप्त किए हुए परीक्षांकों में शेष अन्य व्यक्तियों के परीक्षांकों की अपेक्षा कुछ निश्चित विशेषता होनी चाहिए। दक्षिण के कई शहरों के स्कूलों के रजिस्टरों की छानबीन बड़ी सावधानी से की गई और देशान्तर गमन करने वाले तथा देशान्तर गमन न करने वाले व्यक्तियों द्वारा प्राप्त किये गये परीक्षांकों का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन किया गया। किन्तु इससे दोनों समूहों में कोई भेद सिद्ध नहीं हुआ। देशान्तर गमन करनेवालों में कुछ उच्चतर थे, कुछ हीनतर थे और कुछ सामान्य थे। अतः इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला कि जिन्होंने देशान्तर गमन किया वे अपनी उच्चतर बौद्धिक योग्यता के कारण चुने हुए थे। यों किसी प्रकार का चुनाव तो होता ही है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति देशान्तर गमन नहीं करता, किन्तु इस चुनाव के अनेक विभिन्न कारण होते हैं। इस विषय में और यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका की जिन सफेद ग्रामीण जातियों ने बड़े-बड़े शहरों में देशान्तर गमन किया था और जर्मनी में भी जिन्होंने इसी प्रकार देशान्तर गमन किया था, उनके विषय में जो अध्ययन किया गया उसका भी यही परिणाम निकला। यह सिद्धान्त कि चुने हुए व्यक्ति ही देशान्तर गमन करते हैं समस्या के स्पष्टीकरण के लिए उपयुक्त नहीं है। वर्तमान समस्या के प्रसंग में इसका अर्थ यही है कि नीग्रो बच्चों ने लास ऐंजिल्स और न्यूयार्क में जो अच्छे अंक प्राप्त किए थे उसका कारण यह नहीं था कि दक्षिणवासी नीग्रो व्यक्तियों में से सर्वश्रेष्ठ प्रतिभावान व्यक्ति देशान्तर गमन कर गए थे, किन्तु उसका कारण उत्तरी अमरीका के नगरों में उपलब्ध अच्छी परिस्थितियों द्वारा प्रदत्त अवसर थे।

इस समस्या का हल ढूंढ़ने का जो तीसरा प्रयत्न किया गया उसके परिणामों से भी इस अन्तिम परिणाम की ही पुष्टि होती है। न्यूयार्क नगर में ऐसे बहुत से बच्चे हैं जो दक्षिण से आए हैं: कुछ अभी हाल में ही आए हैं और कुछ वहां बहुत वर्षों से रह रहे हैं। न्यूयार्क की परिस्थितियां दक्षिण अमरीका की अपेक्षा जहां से ये बच्चे आए हैं, अवश्य ही अच्छी हैं। यदि ये परिस्थितियां परीक्षण अंकों पर अच्छा प्रभाव डालती हैं तो जितने अधिक वर्षों तक बच्चे न्यूयार्क में रहे हों, उतना ही अधिक यह प्रभाव भी बढ़ना चाहिए। अन्वेषण ने वास्तव में यही सिद्ध किया था। स्कूल में पढ़नेवाले अनेक नीग्रो बच्चों पर जिनमें लड़के और लड़कियां दोनों ही शामिल थे, विभिन्न प्रकार के अनेक परीक्षण किए गए और यह देखा गया

कि उनके द्वारा प्राप्त किए हुए परीक्षण अंकों में तथा उनकी न्यूयार्क की निवास-अवधि में घनिष्ठ सम्बन्ध था।

इनमें अनेक प्रतिवाद भी थे क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के विषय में यह परिणाम ठीक नहीं था, किन्तु सामान्य परिणाम स्पष्ट और असंदिग्ध था। साधारणतया औसत रूप में सबसे ज्यादा अंक उन्हीं व्यक्तियों ने प्राप्त किए थे, जो वहां सबसे ज्यादा समय से रह रहे थे; और जो दक्षिण से अभी हाल ही में आए थे, उन्होंने सबसे कम अंक प्राप्त किए थे। इसी प्रकार के अन्वेषण वाशिंगटन और फिलाडेलफिया नामक दो अन्य नगरों में भी किए गये थे और वहां भी यही परिणाम निकला था। यह परिणाम न्यायसंगत भी है कि ज्यों ज्यों दो विभिन्न जातियों की परिस्थितियां अधिक समान होती जाती हैं, त्यों-त्यों परीक्षण अंकों का अन्तर भी कम होता जाता है और फिर धीरे-धीरे वह अन्तर पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि इन परीक्षण परिणामों पर जाति का प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि वंश-परम्परागत जातीय भेद-भावों के साथ बौद्धिक क्षमता का कोई संबंध नहीं है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि परीक्षण संस्कृति-प्रभाव-मुक्त नहीं होते हैं, अर्थात् ऐसे परीक्षण नहीं हैं जिनमें परीक्षार्थी के पूर्व अनुभव का कुछ न कुछ प्रभाव परिलक्षित न होता हो, हम यह कह सकते हैं कि ऐसे दो जाति समूहों की तुलना जो पूर्व अनुभव से पूर्ण मुक्त हों असंभव प्रतीत होती है। एक अमेरिकन मनोवैज्ञानिका कुमारी मर्टिल बी० मैकग्रो का विश्वास था कि एक ऐसा तरीका है जिससे संस्कृति-प्रभाव-मुक्त परीक्षण किया जा सकता है—अर्थात् सामाजिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होने से पूर्व ही बच्चों की तुलना की जानी चाहिए। इस विचार को ध्यान में रखकर उसने फ्लोरिडा में रहने वाले श्वेत और नीग्रो बच्चों का अध्ययन किया जिनकी उम्र २ माह तक थी और उसने उनको वे बाल परीक्षण दिए जिनका विकसित निर्माण प्रोफेसर चार्लट बूहलर की देखरेख में हैटजर और वोल्फ ने वियना नगर में किया था। उसने अपने परिणामों का विवरण 'जेनेटिक साइकॉलॉजी मोनोग्राफ्स', १९३१, नामक ग्रंथ में प्रकाशित किया है और उनसे सिद्ध होता है कि औसत रूप में श्वेत बच्चे निश्चित ही नीग्रो बच्चों की अपेक्षा विशेष बढ़कर हैं। लेखक का विचार है कि इससे हमें यह संकेत मिलता है कि नीग्रो बच्चों में स्वाभाविक हीनता होती है।

किन्तु कई कारणों से यह परिणाम स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस थोड़ी उम्र में भी परिस्थिति का प्रभाव किसी भी प्रकार उपेक्षा के योग्य नहीं है। बाल परीक्षणों में एक बच्चा जो कार्य करता है उस पर स्पष्ट रूप से उसके शारीरिक विकास का प्रभाव पड़ता है। यह शारीरिक विकास एवं स्वयं उचित भोजन

सामग्री पर निर्भर है। इस विषय में नीग्रो बच्चे अवश्य ही टोटे में रहे हैं। वे ऐसे स्थानों से आए थे जो आर्थिक रूप में खराब थे। उन बच्चों का वजन भी अपेक्षाकृत कम था। इससे यह संकेत मिलता है कि उन्हें इतने अच्छे खाद्य पदार्थ नहीं मिले थे तथा वे उतने स्वस्थ नहीं थे जितने कि वे श्वेत बच्चे जिनके साथ तुलना की गई थी। ये तथ्य इस कारण कम महत्व के नहीं माने जा सकते कि वे बच्चे काफी छोटे थे। इसके विपरीत शारीरिक विकास और बौद्धिक विकास का पारस्परिक संबंध बड़ी उम्र की अपेक्षा जीवन के प्रारंभ में अधिक होता है। बाल-परीक्षणों का यह गुण है कि वे इस परिणाम में सहायक होते हैं क्योंकि इन परीक्षणों द्वारा जिन शक्तियों की नाप तोल की जाती है वे जितनी सामाजिक और बौद्धिक हैं उतनी ही सहज और स्वाभाविक हैं।

येल विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध बाल मनोविज्ञान-वेत्ता प्रोफेसर आर्नोल्ड जेसेल के निर्देशन में कनेक्टीकट प्रदेश के न्यू हैविन स्थान में श्वेत और नीग्रो बच्चों का अभी हाल ही में एक चिकित्सक डाक्टर बी० पासामनिक ने जो अध्ययन किया है उससे भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है। ये परिणाम सन् १९४६ में 'जर्नल आफ जेनेटिक साइकालाजी' में प्रकाशित हुए थे। इस अध्ययन में नीग्रो बच्चों का शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार का विकास श्वेत बच्चों के समान सिद्ध हुआ था। इन परीक्षणों ने दोनों समूहों के किन्हीं विशेष अंतरों को प्रकट नहीं किया था। अन्वेषक ने इस बात की ओर संकेत किया है कि युद्धकाल में संयुक्त राष्ट्र अमरीका में खाद्य पदार्थों पर सावधानी के साथ कंट्रोल लगा दिया गया था। अतः इस समूह की नीग्रो माताओं को गर्भावस्था में तथा बच्चों के जन्म के पश्चात् भी उचित मात्रा में पौष्टिक भोजन मिलता था और वे अपने बच्चों की काफी अच्छी देख-भाल करने के योग्य थीं। इस विषय में वे वास्तव में श्वेत माताओं से बहुत अधिक भिन्न नहीं थीं। रक्षा-उद्योगों के विकास के कारण उन्हें जो सुअवसर प्राप्त हुए थे उनके परिणामस्वरूप इस नीग्रो समूह का सामान्य आर्थिक स्तर भी काफी उन्नत हो गया था। फलस्वरूप इस अध्ययन में शामिल होने वाले नीग्रो बच्चों के जीवन का प्रारंभ शरीर की दृष्टि से वास्तव में श्वेत बच्चों के समान ही हुआ था। इसका दूसरा परिणाम यह था कि उनके प्रारंभिक मनोवैज्ञानिक विकास में कोई हीनता अथवा रुकावट नहीं दिखाई देती थी। हम एक बार फिर यह देखते हैं कि बच्चों के जीवन के प्रथम वर्ष में परिस्थिति की समानता के कारण, परीक्षण-परिणामों में समानता मिलती है।

एक दूसरा जातीय समूह जिसका काफी विस्तार के साथ और अनेक विभिन्न परीक्षणों द्वारा अध्ययन किया गया है, अमेरिकन इण्डियनों का है। अमेरिका में जितने समूहों का परीक्षण किया गया है, उनमें आम तौर से इनके सबसे कम परी-

क्षणांक हैं। औसत रूप में उनका बौद्धिक भाज्यफल सर्वसामान्य १०० के बजाय ८१ के लगभग है। ऊपर कहे हुए सांस्कृतिक तत्वों को ध्यान में रखते हुए यह परिणाम बिल्कुल ही आश्चर्यजनक नहीं है। अमरीका की शेष जनता की अपेक्षा अमरीकन इण्डियनों की केवल आर्थिक दशा ही हीन नहीं है, किन्तु इनके साथ ही साथ उनकी सारी पृष्ठभूमि और पूर्व अनुभव श्वेत अमरीकावासियों से इतने भिन्न हैं कि यह आशा मुश्किल से की जा सकती है कि परीक्षणों में वे अन्य अमरीकावासियों के समान ही कार्य कर सकेंगे। उनका अंग्रेजी भाषा का अपेक्षाकृत कम ज्ञान अक्सर एक दूसरी अड़चन उपस्थित करता है। कनाडा के ओण्टारियो नगर के इण्डियनों का जो अध्ययन किया गया था, उससे यह प्रकट होता था कि उन्होंने भाषा मुक्त अथवा क्रियात्मक परीक्षणों में सामान्य भाषा-परीक्षणों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे अंक प्राप्त किये थे। अमरीका के दूसरे इण्डियन-समूहों के परिणाम द्वारा भी यही बात सिद्ध हुई है।

कोलोरेडो प्रदेश के डेनवर विश्वविद्यालय के स्वर्गीय प्रोफेसर टी० आर० गार्थ ने यह अन्वेषण करने का प्रयत्न किया कि यदि अमरीका के इण्डियन बच्चों को उन्हीं सामाजिक परिस्थितियों में रहने का सुअवसर दिया जाए जिनमें कि अमरीका के अन्य बच्चे रहते हैं तो क्या होगा? अतः उसने उन इण्डियन बच्चों का अध्ययन किया जिनको श्वेत अमरीका वासियों के पोषण घरों में रखा गया था और जिनकी देख-रेख श्वेत अमरीकावासी पोषक माता-पिताओं ने की थी। उसके परीक्षणों का परिणाम सन् १९३५ के साइकालाजीकल बुलेटिन में प्रकाशित हुआ है। इन इंडियन पोषित बच्चों का औसत बौद्धिक भाज्यफल १०२ था जो अमरीका के साधारण इण्डियन के औसत बौद्धिक भाज्यफल ८१ की अपेक्षा काफी बढ़ कर है। यदि इस बात की संभावना न हो कि जिन इंडियन बच्चों को श्वेत अमरीकावासियों के घरों में रखा गया था वे असाधारण रूप में अन्य बच्चों की अपेक्षा श्रेष्ठ थे, तो उस परीक्षण परिणाम से निश्चयात्मक रूप में यह सिद्ध हो जाएगा कि यदि दो जातीय समूहों की सामाजिक परिस्थितियां समान हों तो उनके परीक्षणांक भी समान होते हैं। यह बहुत संभव हो सकता है कि जब श्वेत अमरीकी व्यक्तियों के कुटुम्ब इंडियन बच्चों को अपने घरों में लेते हैं तो वे जहां तक संभव हो सकता है, श्रेष्ठ बुद्धि के बच्चों को ही चुनते हैं। यहां फिर एक बार चुनाव की समस्या पैदा होती है, जिसका यहां देशान्तर गमन से संबंध नहीं है, बल्कि उन बच्चों के चुनाव से है जिन्हें शिक्षा के असाधारण सुअवसर प्राप्त होंगे।

दुर्भाग्य से हमें इस विषय में ठीक-ठीक यह ज्ञात नहीं कि इन इण्डियन बच्चों का चुनाव किन आधारों पर हुआ था। प्रोफेसर गार्थ ने इस संभावना को दूर करने का कि इन पोषित बच्चों में वंश-परम्परागत विशेषता थी, बहुत

अधिक प्रयत्न किया और उन्होंने इसके लिये उन बच्चों के अन्य भाइयों और बहिनों का भी परीक्षण किया। ये भाई-बहन श्वेत अमरीका वासियों के घरों में नहीं रखे गये थे और वे विशेष रूप से सामान्य इण्डियनों के सामाजिक वातावरण में ही रह रहे थे। उन्होंने औसत रूप में बहुत ही कम बौद्धिक भाज्यफल ८७.५ प्राप्त किया। इससे हमें यह सुझाव मिलता है कि वंश-परम्परा नहीं, परिस्थिति ही इस परिणाम के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि समान कुटुम्बियों के बच्चों की प्रतिक्रिया दो भिन्न परिस्थितियों में काफी अधिक भिन्न थी। किन्तु यह प्रमाण पूरा नहीं है क्योंकि एक ही कुटुम्ब के दो भिन्न बच्चों की वंश-परम्परागत कार्य-दक्षता प्रत्येक प्रकार से समान नहीं मानी जा सकती।

इससे अधिक संतोषजनक प्रमाण ओकलहोमा विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे० एच० रोहरेर के बाद के अन्वेषण से मिलता है जिसका प्रकाशन सन् १९४२ में जर्नल आफ सोशल साइकालॉजी में हुआ था। उसने उन ओसेज इंडियनों का बौद्धिक परीक्षण किया था जो इस कारण अपवाद स्वरूप हैं कि वे उन्हीं सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में रहते हैं जिनमें उनके साथ तुलना किए जानेवाले श्वेत अमरीकावासी। इसका मुख्य कारण यह सौभाग्यपूर्ण घटना है कि उन्हें जो भूमि अमरीका की सरकार द्वारा दी गई थी, उसमें बाद में तेल की खोज कर ली गई। इसके परिणाम स्वरूप इन इण्डियनों की आर्थिक दशा काफी अच्छी हो गई, और वे अपने तथा अपने कुटुम्ब वालों के लिए जीवनोपयोगी उन सामाजिक और शिक्षा संबंधी परिस्थितियों का निर्माण करने के योग्य हो गए जो अनेक अमरीकी इंडियन जातियों की परिस्थितियों से कहीं अधिक अच्छी थीं। इन बातों को ध्यान में रखते हुए बौद्धिक परीक्षणों में किए गए उनके कार्यों से इस बात पर काफी रोशनी पड़ती है। दो विभिन्न परीक्षणों में जिनमें से एक भाषा मुक्त था और दूसरा भाषा पर आधारित था, उन्होंने औसत रूप में जो बौद्धिक भाज्यफल प्राप्त किए वे क्रमशः १०४ और १०० थे। अमरीका के इंडियन बच्चों की ऊपर से दिखाई देनेवाली हीनता पूर्णरूप से दूर हो गई। इतना ही नहीं, बल्कि वे उन श्वेत बच्चों की अपेक्षा कुछ अच्छे सिद्ध हुए जो उन्हीं स्कूलों में अध्ययन करने जाते थे। इस विषय में कोई शंका नहीं हो सकती कि यदि अमरीका के इण्डियन बच्चों को शिक्षा की वे ही सुविधायें मिल जाएं जो श्वेत बच्चों को मिलती हैं, तो उनके परीक्षण परिणाम उसी अनुपात में बढ़ जाते हैं।

इस परिणाम का स्पष्टीकरण चुनाव द्वारा निश्चित रूप में नहीं किया जा सकता। ओसेज इण्डियनों को जब जमीन दी गई थी तो उसके बाद ही तेल की खोज हुई थी, उन्होंने इस विशेष भूभाग का स्वयं चुनाव नहीं किया था। वे केवल सौभाग्यशाली थे और उनके सौभाग्य ने उन्हें वे सुअवसर प्रदान किए जो दूसरों को

नहीं मिले थे। इसकी झलक केवल उनके उच्चतर आर्थिक स्तर में नहीं दिखाई देती, अपितु उस उच्चतर सफलता में भी दिखाई देती है जो उन्होंने बौद्धिक परीक्षणों में समस्याओं को हल करने में प्राप्त की थी। अतः यह परिणाम न्याय संगत ही है कि समान सुविधाएं और सुअवसर प्राप्त होने पर अमरीका के इंडियन बच्चे उन शक्तियों का प्रदर्शन कर सकते हैं जो किन्हीं भी अन्य बच्चों की शक्तियों के समान हो सकती हैं।

इस क्षेत्र में जो अन्वेषण अब तक हुआ है उस सबका सारांश यह है कि बुद्धि में स्वाभाविक जातीय भेद नहीं पाए गए हैं कि परीक्षण-परिणामों में जो अंतर दिखाई देता है उसका कारण सामाजिक और शिक्षा संबंधी परिस्थितियां हैं। ज्यों-ज्यों दो विभिन्न जातीय समूहों के परिस्थिति जन्य सुअवसर समान होते जाते हैं त्यों-त्यों परीक्षण परिणामों में पाए जाने वाले भेद भी समाप्त होते जाते हैं। यह प्रमाण उस मान्यता के सर्वथा विरुद्ध है कि जाति के आधार पर ही बुद्धि का स्तर निर्धारित किया जाता है। यूनेस्को के 'स्टेटमेण्ट आन रेस' में इस सिद्धांत को इस प्रकार बताया गया है :—

> इस बात को अब आम तौर से स्वीकार कर लिया गया है कि बौद्धिक परीक्षण स्वयं हमें इस योग्य नहीं बनाते कि हम ठीक-ठीक यह निर्धारित कर सकें कि स्वाभाविक शक्तियों का कितना प्रभाव है और परिस्थिति, प्रशिक्षण और शिक्षा का कितना प्रभाव है। जहां संभव हो सका है वहां परिस्थितियों के भेदों को दूर किया गया है और इन परीक्षणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव समुदायों के बौद्धिक गुणों में मौलिक समता है।

154306 394-H/1

कुछ सम्बद्ध (मिली-जुली) समस्याएँ

विभिन्न समुदायों की सामान्य सहज बुद्धि के साथ जाति का क्या सम्बन्ध है, इस प्रश्न के अतिरिक्त और भी कई समस्याएं हैं जिन पर अधिक विचार करने की आवश्यकता है। इन समस्याओं पर भी कई विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है और सत्य तथा असत्य को अलग करने वाली (विभाजक रेखा) की भी प्रायः अवहेलना कर दी गई है। इन समस्याओं से केवल मनोवैज्ञानिकों का ही सम्बन्ध नहीं है, बल्कि अक्सर जीवविज्ञानवेत्ता, मनुष्य रचनाशास्त्र, समाजशास्त्र और इतिहासकार का भी है। आगे की पंक्तियों में इन समस्याओं पर इस आधार पर विचार किया जाएगा कि मनोवैज्ञानिक विधियों के प्रयोग द्वारा इन समस्याओं को हल करने में कितना योग प्रदान किया जा सकता है। अन्य विधियों का प्रयोग केवल तभी किया जायेगा जब मनोवैज्ञानिक अन्वेषणों के उद्देश्य और परिणामों को समझने के लिये वे आवश्यक होंगी।

शरीर रचना और मानसिक अवस्था

यह विश्वास जनता में व्यापक रूप में प्रचलित है कि किसी भी व्यक्ति की शारीरिक रचना को देख कर हमें उसकी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं की काफी जानकारी प्राप्त हो जाती है। उदाहरण के रूप में यह अनुमान प्रायः लगाया जाता है कि ऊंचा माथा श्रेष्ठ बुद्धि का सूचक है, पीछे हटी हुई ठोड़ी का अर्थ कमजोरी और दृढ़ निश्चय की कमी माना जाता है, मोटे होठ कामुकता के सूचक माने जाते हैं, आदि आदि। काल्पनिक कथाओं की पुस्तकें इस प्रकार के हवालों से विशेष रूप से भरी रहती हैं। शायद इसकी सर्व प्रसिद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति शेक्सपियर के 'जूलियस सीजर' में मिलती है:—

> मेरे चारों ओर ऐसे मनुष्य होने चाहिए जो मोटे हों :
> जो चिकने सिर वाले हों, जो रात में सोते हों।
> सामने कैसियस है जिसकी दृष्टि क्षीण और भूखी है :
> वह बहुत अधिक सोचता है: ऐसे मनुष्य भयंकर होते हैं।

जातियां मानवों के ऐसे समूहों से बनती हैं जो अन्य समूहों से पितृ-परम्परागत

शारीरिक विशेषताओं में भिन्न होते हैं। यदि इनका किसी न किसी रूप में मानसिक दशा से सम्बन्ध हो तो हमें इस विश्वास का आधार मिल जाएगा कि जातियों में पितृ-परम्परागत मनोवैज्ञानिक भेद होते हैं। कुछ मनुष्य शरीर रचना-विशारदों ने अपना ऐसा ही मत प्रकट किया है। उदाहरण स्वरूप, कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ए० एल० क्रोबेर ने १९३४ में लिखा था : "इस सिद्धांत के अतिरिक्त और कुछ मानने का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है कि जो जातियां शरीर-रचना के आधार पर परस्पर भिन्न होती है वे शारीरिक धर्म और मनोविज्ञान के आधार पर भी भिन्न होती हैं"। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फ्रांज बोस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी माइण्ड आफ प्रिमिटिव मैन' के प्रथम संस्करण में सन् १९११ में लिखा था :

> यह संभव प्रतीत नहीं होता कि जिन जातियों के शारीरिक निर्माण में भिन्नता है उनका मस्तिष्क ठीक-ठीक एक ही प्रकार से कार्य कर सकेगा। शरीर-रचना संबंधी भिन्नताओं के साथ ही साथ शारीरिक धर्मों और मनोविज्ञान की भिन्नताएं भी होनी चाहिए। जैसे हमने जातियों की शरीर रचना-संबंधी भिन्नताओं का स्पष्ट प्रमाण पाया था, उसी प्रकार हमें आशा करनी चाहिए कि मानसिक गुणों की भिन्नताएं भी मिल जाएंगी।

यह महत्वपूर्ण बात है कि ये पंक्तियां इस पुस्तक के सन् १९३८ के दूसरे संस्करण में नहीं मिलतीं और यह नितांत सम्भव प्रतीत होता है कि बोस ने इस विषय में अपना मत बदल दिया हो। खैर कुछ भी सही, क्रोबेर अथवा बोस का यह विचार नहीं था कि रचना और कार्य के संबंध से यह संकेत मिलता है कि कुछ जातियां मनोवैज्ञानिक आधार पर दूसरी जातियों से श्रेष्ठ होती हैं, किन्तु केवल इतना ही संकेत मिलता है कि वे भिन्न होती हैं। जातियों के दैवी प्रभुत्व के सिद्धांत का विरोध करने में ये दोनों ही शरीर-रचना विज्ञान वेत्ता, विशेषरूप से बोस, अग्रणी रहे हैं।

और अधिक सीमित अर्थ में, ऊपर व्यक्त किया हुआ मत स्वीकार करने योग्य नहीं माना जा सकता। शारीरिक विशेषताओं का मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से संबंध जोड़ना वास्तव में अत्यन्त संदेहपूर्ण है। अभी तक वैज्ञानिक आधार पर स्वीकार करने योग्य ऐसा कोई प्रयोग नहीं हुआ है जिससे शारीरिक रूप-रंग और व्यक्तित्व की विशेषताओं में संबंध सिद्ध किया गया हो। एक यह उदाहरण दिया जा सकता है कि एक बार यह अन्वेषण किया गया था कि किसी व्यक्ति के माथे की ऊंचाई और उसके द्वारा प्राप्त परीक्षण अंकों में कितना संबंध है। इससे इस संबंध में प्रचलित मत की पुष्टि नहीं हुई थी। ऊंचे माथे वाले विद्यार्थी छोटे माथे वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान सिद्ध नहीं हुए। और भी

कई शारीरिक विशेषताओं के सम्बन्ध में यही परिणाम निकला। बुद्धि की दृष्टि से अथवा व्यक्तित्व की दृष्टि से श्वेत रंग की सुन्दरियों और श्यामवर्ण की स्त्रियों में, लम्बे पुरुषों में अथवा छोटे पुरुषों में, गोल सिरवाले व्यक्तियों में अथवा लम्बे सिरवाले व्यक्तियों में, गोल आंखें वाले व्यक्तियों में अथवा छोटी आंखों वाले व्यक्तियों में और पतले होठ वाले अथवा मोटे होठ वाले व्यक्ति में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता है। कुछ विशेष अथवा असाधारण व्यक्तियों को छोड़ कर सिर के आकार का भी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता है। हम आसानी से इस निर्णय पर पहुंच जाते हैं कि शरीर के जिन विशेष रूप, रंग और आकार के आधार पर जातियों का विभाजन किया गया है उनमें से कोई भी मानसिक दशा का रहस्य प्रकट करने में सार्थक सिद्ध नहीं होता। इस क्षेत्र में अन्वेषण चल रहा है, किन्तु अब व्यक्ति के संपूर्ण आकार पर अधिक ध्यान दिया जाता है,और उसके किसी एक अंग विशेष पर कम। किन्तु फिर भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह-शरीर रचना संबंधी विधि भी सार्थक हो सकेगी या नहीं। कुछ भी हो जाति की समस्या के साथ तो इसका संबंध बहुत ही कम होगा अथवा बिल्कुल नहीं होगा, क्योंकि सभी जातीय समूहों में अनेक भांति के विभिन्न आकार प्रकार होते हैं। हमारा इस निर्णय पर पहुंचना न्यायसंगत ही है कि जातीय समूहों में जो रचना संबंधी विभिन्नताएं होती हैं, उनके साथ अनिवार्य रूप से मनोवैज्ञानिक भिन्नताएं नहीं होतीं।

योग्यता की उच्च सीमाएं

बुद्धि में पाए जानेवाले जातीय भेदों की समस्या पर विचार करने का एक दूसरा तरीका यह है कि हम उस वर्ग के साधारण व्यक्तियों का अध्ययन करने के बजाय उच्च कोटि के व्यक्तियों को देखें। यह सुझाव प्रस्तुत किया गया है कि किसी वर्ग ने जो महत्वपूर्ण योग प्रदान किये हैं उनका आधार आदमियों की बड़ी संख्या की योग्यता नहीं है, बल्कि उस वर्ग के सर्वश्रेष्ठ अथवा असाधारण व्यक्तियों की योग्यता है, उन लोगों की जो विभाजन तुला के ऊंचे सिरे पर हैं। अतः जातीय समूहों की तुलना इस आधार पर की गई है कि उनमें प्रतिभाशाली व्यक्ति कितने अधिक हुए हैं। यह वास्तव में एक कठिन और पेचीदा कार्य है। ऐसा कोई आसान मानदण्ड नहीं है जिससे हम प्रतिभाशाली व्यक्ति को पहचान सकें और इतिहास ऐसे पुरुषों के उदाहरणों से भरा पड़ा है जिनको उनकी मृत्यु के बाद ही प्रतिभाशाली माना गया था, अथवा इसके विपरीत इतिहास ऐसे पुरुषों के उदाहरणों से भरा पड़ा है जो किसी समय बहुत प्रतिष्ठित समझे जाते थे और बाद में वे अंधकार में विलीन हो गए। इसके अतिरिक्त, प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने पूर्वकाल

के कार्यों के आधार पर ही निर्माण करते हैं। कोई भी व्यक्ति यह आशा नहीं कर सकता कि फीजी द्वीप में एक बीथोवेन सहसा उत्पन्न हो जाएगा जिसे उसकी पैतृक सम्पत्ति के रूप में कार्य करने वाली यूरोप के संगीत की पृष्ठभूमि प्राप्त न हो, अथवा यह कि सापेक्षवाद के सिद्धान्त का विकास करने के लिये नाइजीरिया में आइन्स्टीन पैदा हो जाएगा जिसे यह ज्ञान न हो कि भौतिक शास्त्र में उसके पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा कौन-कौन-सी खोजें की जा चुकी हैं। अपनी ही सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर सभी समाजों में असंदिग्ध रूप से आविष्कारक, नवीन रीति-प्रवर्तक और प्रतिभाशाली व्यक्ति हुए हैं।

मनोविज्ञान वेत्ताओं ने इस समस्या में क्या योग प्रदान किया है, इस विषय पर पुनः एक बार विचार करने से यह तत्काल स्पष्ट हो जाता है कि योग्यता की उच्च सीमाएं जैसी कि वे बौद्धिक परीक्षणों द्वारा नापी गई हैं, अनेक विभिन्न जातीय समूहों के सदस्यों द्वारा प्राप्त कर ली गई हैं। इसका अद्भुत उदाहरण अमरीका की एक नीग्रो लड़की है जिसने नौ वर्ष की आयु में २०० बौद्धिक भाज्यफल प्राप्त किया था। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। इसका यह अर्थ है कि इस नौ वर्ष की लड़की ने परीक्षण में इतना अच्छा कार्य किया जितना कि एक १८ वर्ष का साधारण व्यक्ति करता है। सारे संसार में जिन हजारों बच्चों का परीक्षण किया गया है, उनमें से बहुत थोड़े हैं जिन्होंने इतनी सफलता प्राप्त की हो। यह लड़की शुद्ध नीग्रोवंश की है और उसके मातृवंश अथवा पितृवंश में श्वेत रक्त के सम्मिश्रण का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। उसकी पृष्ठभूमि है, उसकी माता पहले एक स्कूल अध्यापिका थी और उसका पिता विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट है। प्रोफेसर घिटी और जैनकिन्स ने इस लड़की का उल्लेख सन् १९३५ में जर्नल आफ सोशल साइकालाजी में किया था। उनका मत है कि इस लड़की के विकास में सर्वश्रेष्ठ पैतृक शारीरिक विशेषताओं और अनुकूल परिस्थितियों का प्रशस्त संयोग था। जो कुछ भी हो, यह स्पष्ट है कि नीग्रो वंश में उत्पन्न होने के कारण किसी व्यक्ति की कार्य क्षमता में कोई विशेष कमी नहीं आती। यह लड़की तो वास्तव में असाधारण थी, किन्तु और भी ऐसे अनेक नीग्रो व्यक्ति पाए जाते हैं जो विभाजन वक्र रेखा के ऊपर सिरे पर होते हैं। इन परीक्षणों के परिणाम इस सिद्धांत की पुष्टि नहीं करते कि महान् व्यक्तियों को जन्म देने की शक्ति में नीग्रो जाति और श्वेत जाति में अन्तर है।

जाति-मिश्रण के प्रभाव

जाति और मनोविज्ञान के संबंध की सारी समस्या के साथ जाति-मिश्रण की समस्या का महत्वपूर्ण संबंध है। बहुत से लोगों का विचार है कि यदि विभिन्न

जातियों की श्रेष्ठता अथवा हीनता का निर्णय हो जाए तो उससे जातियों के मिश्रण के विषय में कोई राय निर्धारित की जा सकती है। जो व्यक्ति दूसरी जातियों को हीन समझते हैं वे जातियों के पारस्परिक मिश्रण के विषय में प्रायः यह आपत्ति करते हैं कि इससे उनकी अपनी तथाकथित श्रेष्ठ जाति की विशेषता सम्भवतः कम हो जाएगी। ऐसी दशा में यदि हम इस सिद्धांत को स्वीकार कर लें कि इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि कुछ जातियां जीव विज्ञान के आधार पर अन्य जातियों से हीन हैं, तो जाति-सम्मिश्रण पर लगाये गए सभी गम्भीर आरोप समाप्त हो जाएंगे।

किन्तु यह समस्या कुछ अधिक पेचीदा है। जाति-मिश्रण के विषय में हमारा जो रुख है उसके साथ हमारी भावनाएं और धार्मिक विचार ऐसे मिले हुए हैं कि उसे एक शुद्ध वैज्ञानिक प्रश्न मान कर विचार करना आसान काम नहीं है। साथ ही साथ, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी, कभी-कभी यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जाति-मिश्रण स्वयं जीवविज्ञान के आधार पर भी हानिप्रद है और जाति-समूहों की मूलभूत श्रेष्ठता अथवा हीनता का जो प्रश्न जाति-मिश्रण में प्रस्तुत होता है, वह अप्रासंगिक है। अमरीका के उत्पत्ति-विज्ञान-वेत्ता सी० बी० डेवेनपोर्ट का यही मत है। उसने अपने प्रकाशनों में उन बातों का उल्लेख किया है जिन्हें वह जाति-मिश्रण के दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम मानता है। उसके मत में एक वर्ण-संकर जाति बेढंगी होती है जो बुरी तरह से परस्पर जोड़ी जाती है। उसके मतानुसार वर्णसंकर जाति में कुछ विशेषताएं तो एक वंश की आ सकती हैं और कुछ विशेषताएं दूसरे वंश की, और यह संभव है कि दोनों प्रकार की विशेषताओं में ठीक मेल न हो सके। उदाहरण के लिये, एक नीग्रो व्यक्ति की बांहें और टांगें उसके धड़ के आकार के अनुपात से अधिक लम्बी होती हैं और श्वेत व्यक्तियों की अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। जाति-मिश्रण होने पर एक ऐसा व्यक्ति पैदा हो सकता है जो नीग्रो व्यक्ति की लम्बी टांगों और श्वेत व्यक्ति की छोटी बांहों से युक्त हो। डेवेनपोर्ट के मतानुसार ऐसे व्यक्ति को टोटा रहेगा क्योंकि उसे जमीन पर से किसी चीज को उठाने के लिये अधिक झुकना पड़ेगा। यह कोई बहुत बड़ा टोटा प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त यदि किसी वर्णसंकर को श्वेत व्यक्ति की छोटी टांगें और नीग्रो की लम्बी बाहें मिल जाएं, तो वह अपने दोनों ही माता-पिताओं नीग्रो और श्वेत व्यक्ति की अपेक्षा चीजों को जमीन पर से अधिक आसानी से उठा लेगा। दूसरे उत्पत्ति विज्ञान-वेत्ताओं ने डेवेनपोर्ट के मत का खंडन किया है। उन्होंने यह निर्देश किया है कि कोई व्यक्ति शरीर के विभिन्न अंगों के आकार को पैतृक सम्पत्ति के रूप में अलग-अलग प्राप्त नहीं करता। सावधानीपूर्वक किए गए इन अन्वेषणों ने यह दिखा दिया है कि माता-पिता की जातियों की अपेक्षा वर्ण-संकर संतानों में अधिक असम्बद्धता नहीं होती है।

इस प्रश्न का निर्णय जीव विज्ञान-वेत्ताओं को करना चाहिए। लेकिन इससे मनोविज्ञानवेत्ता का भी संबंध है और जाति-मिश्रण के प्रभावों पर कुछ प्रकाश डालने की आशा से मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा वर्णसंकर का अध्ययन किया गया है। डेवेनपोर्ट ने स्वयं भी अपने सहयोगी मौरिस स्टेगर्डा के साथ, जमेका में श्वेत, काले (शुद्ध नीग्रो) और भूरे (श्वेत और नीग्रो का मिश्रण) व्यक्तियों पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया था। परिणामों से यह सिद्ध हुआ कि काले व्यक्ति श्वेत व्यक्तियों की अपेक्षा केवल थोड़े से ही हीन थे और श्वेत तथा काले दोनों ही प्रकार के व्यक्ति भूरे व्यक्तियों की अपेक्षा निश्चित रूप से अच्छे थे। इस प्रकार के अर्थ से इस मत की पुष्टि होती है कि जाति-मिश्रण के बुरे परिणाम होते हैं और इससे जो असम्बद्धताएँ पैदा होती हैं वे मानसिक और शारीरिक दोनों ही क्षेत्रों में पाई जाती है।

किन्तु इस क्षेत्र में किए गए दूसरे अध्ययनों से इस मत की पुष्टि नहीं होती है। उन अध्ययनों से यह पता चलता है कि अंक प्राप्त करने में या तो वर्णसंकर व्यक्ति श्वेत और नीग्रो व्यक्तियों के बीच के हैं, अथवा जब हम ऐसी जाति पर जो आर्थिक और शिक्षा संबंधी दृष्टिकोणों से अपेक्षाकृत समान है, सावधानीपूर्वक शरीर रचना संबंधी मापदण्डों का प्रयोग करते हैं——अन्तर्मिश्रण की मात्रा और परीक्षण-अंकों में किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं है। सभी परिणामों को एक साथ देखने पर हमें ज्ञात होता है कि वर्णसंकर व्यक्तियों में अपने माता पिता के वर्गों की अपेक्षा न तो कोई निश्चित उच्चता होती है न हीनता। जाति-मिश्रण का प्रभाव स्वयं न तो अच्छा है न बुरा, यह उन व्यक्तियों के गुणों पर निर्भर है जिन्होंने यह मिश्रण किया है अथवा यह इस बात पर निर्भर है कि सारा समाज वर्णसंकर को किस प्रकार स्वीकार करता है अथवा उसके साथ कैसा व्यवहार करता है। यदि हम शंघाई और हवाई नगरों के चीनी और श्वेत वर्णसंकरों में पाए जाने वाले अन्तर पर ध्यान दें तो यह अन्तिम बात स्पष्ट हो जाती है। शंघाई के वर्णसंकरों के विषय में कहा जाता है कि वे समाज में ठीक न खपे हुए, दुर्भाग्यशाली व्यक्ति हैं जो मुख्यतया नगर के कम उल्लासपूर्ण स्थलों में रहते हैं। हवाई के वर्णसंकरों के विषय में कहा जाता है कि वे जीवन के प्रत्येक पक्ष में स्वास्थ्यपूर्ण सहयोग प्राप्त कर रहे हैं। वर्णसंकरों की सामाजिक स्थिति उनके प्रति समाज के दृष्टिकोण पर निर्भर है, उनके किसी विशेष जीवविज्ञान पर नहीं।

अब तक प्राप्त सामग्री के आधार पर हम जिन निर्णयों पर पहुंचे हैं उनका सारांश यूनेस्को के जातिविषयक वक्तव्य में स्पष्टरूप में इस प्रकार है:—

> ....“इस बात का कोई संतोषजनक प्रमाण नहीं मिला है कि जाति-मिश्रण स्वयं जीवविज्ञान की दृष्टि से बुरे प्रभाव डालता है।

वास्तविक तथ्यों द्वारा इन कथनों की पुष्टि नहीं होती कि वर्णसंकर व्यक्ति प्रायः शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार से अवांछनीय लक्षण प्रकट करते हैं, अथवा उनमें असम्बद्धताएं और मानसिक भ्रष्टताएं पाई जाती है।

और,

इसका कोई प्रमाण नहीं है कि जाति-मिश्रण से जीवविज्ञान की दृष्टि से बुरे परिणाम निकले हैं। जाति-मिश्रण के जो सामाजिक परिणाम होते हैं चाहे वे अच्छाई के लिए हों अथवा बुराई के लिए, उनका कारण सामाजिक परिस्थितियों में ढूंढ़ना चाहिए।"

विकास-क्रम की समस्या

इस क्षेत्र की एक दूसरी समस्या जिसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षण कुछ योग-प्रदान कर सकते हैं, विभिन्न जातियों के मानसिक विकास क्रम से संबंधित है। कभी-कभी यह सुझाव रखा गया है कि नीग्रो और श्वेत बच्चों की बुद्धि में चाहे छोटी उम्र में कोई अन्तर दिखाई न दे, किन्तु बाद में श्वेत बच्चों की श्रेष्ठता प्रकट हो जाएगी, क्योंकि उनका मानसिक विकास अधिक समय तक होता रहेगा। कुछ विद्वानों की यह आग्रहपूर्ण मान्यता है कि असभ्य या जंगली बच्चे यूरोपियन बच्चों की अपेक्षा शीघ्र बढ़ते हैं और उनसे कहीं अधिक शीघ्र प्रौढ़ हो जाते हैं। वे छोटी उम्र में ही अपने पूर्ण विकास को प्राप्त कर लेते हैं और उनमें परिवर्तन अथवा विकास की कम शक्ति रह जाती है। इस विषय में एक सुझाव यह भी रखा गया है कि इसका सम्बन्ध शरीर विच्छेद संबंधी और शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी उन भेदों से है जिनके कारण तथा-कथित हीन जातियों के व्यक्तियों की खोपड़ी के जोड़ जल्दी ही बन्द हो जाते हैं। इसका यह अर्थ होता है कि मस्तिष्क के विकास के लिए अब अधिक क्षेत्र नहीं हैं और परिणामस्वरूप और अधिक मानसिक विकास असंभव हो जाता है।

इस सम्पूर्ण कल्पना को भी अब उन अनेक कपोल कल्पित बातों से समझना चाहिए जो जाति की समस्या के संबंध में प्रचलित हो गई हैं। खोपड़ी के खुले जोड़ों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति जैसी किसी यांत्रिक वस्तु द्वारा, वास्तव में मानसिक विकास निर्धारित नहीं किया जा सकता। ऐसे अनंत व्यक्तियों के उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनका मानसिक विकास जीवन भर होता रहता है और यद्यपि उनकी खोपड़ियां आकार में नहीं बढ़तीं, किन्तु फिर भी इससे उनके विकास में रुकावट नहीं आती। कुछ भी हो, जहां तक जातीय वर्गों का संबंध है, इस प्रकार के शरीर-विच्छेद संबंधी और शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी भेद कभी दिखाए नहीं गए हैं। इसके विपरीत, नीग्रो और श्वेत बच्चों के विषय में सावधानी

पूर्वक किए हुए अध्ययनों से यह प्रकट होता है कि उस सामान्य आयु में जबकि खोपड़ियों के जोड़ अन्तिम रूप में बन्द हो जाते हैं, उन दोनों प्रकार के बच्चों में कोई अन्तर नहीं होता है।

जब विभिन्न आयु के बच्चों के बुद्धि-परीक्षण किए जाते हैं तब हमें इस बात का कुछ थोड़ा-सा संकेत मिलता है कि नीग्रो और श्वेत बच्चों के परीक्षण अंकों का अन्तर आयु के बढ़ने पर अधिक स्पष्ट हो जाता है। किन्तु यह प्रमाण विवादग्रस्त है, क्योंकि इससे संबंधित सभी अन्वेषणों से यह परिणाम नहीं निकलता है। जब यह परिणाम निकलता भी है तब इसका संबंध उन बातों से जोड़ा जा सकता है जिनका मानसिक विकास क्रम में पाए जाने वाले वंश-परम्परागत भेदों से कोई संबंध नहीं होता। इस बात की ओर पहले ही संकेत किया जा चुका है कि नीग्रो व्यक्तियों के बहुत ऐसे समूह ऐसे वातावरण में रहते हैं जो शिक्षा की दृष्टि से तथा सामाजिक दृष्टि से हीन होते हैं। इस बात को बहुत से अन्वेषणों ने सिद्ध कर दिया है कि जो बच्चे चाहे वे श्वेत हों अथवा नीग्रो इस प्रकार के हीन वातावरण में पलते हैं, उनका अपेक्षाकृत मानसिक स्तर (यदि उसी आयु के अन्य बच्चों से उनकी तुलना की जाए) अवश्य ही निश्चित रूप से कम हो जाता है।

इस प्रकार का एक अध्ययन इंगलैण्ड में नहर-नाम के बच्चों के विषय में किया गया था। ये बच्चे केवल कभी-कभी ही स्कूल जाते थे और बौद्धिक दृष्टि से उनके घर अत्यन्त निम्न स्तर पर थे। यह देखा गया कि बहुत छोटे बच्चों का, जो ६ वर्ष या कम आयु के थे, औसत बौद्धिक भाज्यफल काफी ऊंचा, लगभग ९० था। लेकिन आयु के बढ़ने पर यह तेजी के साथ गिरता गया, और सबसे बड़ी उम्र के बच्चों के समूहों का जिनकी आयु १२ वर्ष या अधिक थी, बौद्धिक भाज्यफल केवल ६० था। केंटुकी और वर्जीनिया के पहाड़ों में रहने वाले अमरीकी बच्चों के विषय में भी यही परिणाम प्राप्त हुए थे। ये श्वेत बच्चे थे और अब तक किसी ने यह सुझाव नहीं रखा है कि यह किसी जातीय तत्व के कारण है जो मानसिक विकास को प्रभावित करता है। वास्तव में होता यह है कि ज्यों-ज्यों अधिक वर्ष बीतते जाते हैं हीन वातावरण का सामूहिक निषेधात्मक प्रभाव बढ़ जाता है और यह श्वेत अथवा नीग्रो—दोनों ही प्रकार के बच्चों को समान रूप से प्रभावित करता है। इस विश्वास का कि जातियों में इस प्रकार का भेद होता है, कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

विशिष्ट योग्यताओं में भेद

जातीय भेदों के सम्बन्ध में एक दूसरी संभावना जिस पर अवश्य विचार किया जाना चाहिए, यह है कि चाहे समग्र बौद्धिक परीक्षण में विभिन्न जातियों के समूह

समान अंक प्राप्त करते हों, किन्तु उनकी कुछ विशिष्ट योग्यताओं में शायद अन्तर हो सकता है, उदाहरण स्वरूप मौखिक योग्यता, स्मरण शक्ति, गणन योग्यता, संगीत-निपुणता आदि आदि में। इस क्षेत्र में किए गए अन्वेषण के परिणामों से इस प्रकार के मत की पुष्टि नहीं होती। बौद्धिक परीक्षणों की भांति विशिष्ट योग्यताओं के परीक्षण भी उन्हीं सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। वे कभी कभी दो जातीय समूहों के भेदों की ओर संकेत करते हैं, किन्तु उनमें उस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि ये भेद स्वरूप में पितृ-परम्परागत है। उदाहरणस्वरूप, इस बात का कुछ प्रमाण मिलता है कि यहूदी बच्चे भाषा के परीक्षणों में अन्य बच्चों से अच्छे होते हैं और प्रेरणावाले अथवा स्थान संबंधी परीक्षणों में अपेक्षाकृत हीन होते हैं। स्मरण शक्ति के परीक्षणों में श्वेत बच्चों की अपेक्षा नीग्रो बच्चे कुछ अच्छा कार्य करते हैं। संगीत-योग्यता में नीग्रो और श्वेत व्यक्तियों के समूहों में कोई स्थायी भेद नहीं पाए जाते।

विशिष्ट योग्यता अथवा सामान्य योग्यता, इन दोनों के ही संबंध में हम एक ही निर्णय पर पहुंचते हैं। ज्यों-ज्यों सांस्कृतिक और शिक्षा संबंधी परिस्थितियां अधिक समान होती जाती हैं, त्यों-त्यों ये दिखाई देनेवाले भेद लुप्त होते जाते हैं।

व्यक्तित्व और स्वभाव में पाये जाने वाले भेद

बुद्धि अथवा सामर्थ्य में जो ऊपर कहे हुए जातीय भेद पाये जाते हैं, उनसे हट कर जब हम उन भेदों पर विचार करते हैं जो अ-बौद्धिक लक्षणों में पाए जाते हैं, तो हमें बहुत अंशों में वैसी ही दशा मिलती है और बहुत अंशों में उसी प्रकार के निर्णयों के लिए समर्थन मिलता है। यहां भी हमें भेद तो मिलते हैं किन्तु वे अ-स्थायी होते हैं और उनका संबंध जीव विज्ञान से न होकर, अवश्य ही सामाजिक परिस्थितियों में पाए जाने वाले तत्वों से होता है।

व्यक्तित्व तथा स्वभाव के कुछ पक्षों का संबंध प्राणी की शारीरिक क्रियाओं के साथ प्रतीत होता है, और इस संबंध के विषय में एक बहुत बड़ा साहित्य है। उदाहरणस्वरूप इस बात की ओर संकेत किया गया है कि चीनी व्यक्तियों के रक्त का दबाव यूरोपवासियों की अपेक्षा कुछ कम होता है और उनके मौलिक शारीरिक परिवर्तन की वह गति भी कम होती है जो शारीरिक धर्मों में होने वाले परिवर्तन की गति का माप होती है। पश्चिमी दुनिया की अपेक्षा चीन में जाहिरा तौर पर कार्य करने की जो अधिक शिथिल (मन्द) गति दिखाई देती है, उसका समाधान कुछ अन्वेषकों ने इसी तथ्य को मान कर किया है। किन्तु इसका एक और भी अधिक संभव समाधान इसका बिल्कुल उलटा हो सकता है, अर्थात् जब जीवन व्यस्त और कष्टपूर्ण होता है तो उससे रक्त के दबाव और मौलिक परिवर्तनशीलता दोनों

में ही वृद्धि हो जाती है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी बातें शामिल हो सकती हैं, जैसे भोजन, जलवायु, पेशा आदि जो अन्तिम परिणाम में अपना योग प्रदान करती हैं (प्रभावित करती हैं)। इस समाधान की सचाई का सर्वश्रेष्ठ संकेत इस तथ्य से मिलता है कि संयुक्त राष्ट्र और यूरोप में रहने वाले चीनी व्यक्तियों के रक्त के दबाव और मौलिक परिवर्तनशीलता में वृद्धि पाई जाती है तथा चीन में रहने वाले यूरोपियनों में इन बातों में उसी अनुपात से कमी पाई जाती है।

जातीय समूहों में व्यक्तित्व अथवा स्वभाव में जो भेद पाए जाते हैं उनका और भी अधिक सीधा और सरल अध्ययन करने की बहुत-सी कोशिशें की गई हैं। जिन परीक्षणों का प्रयोग किया गया है उनके रूप में काफी अन्तर है। उनमें अपेक्षाकृत ऐसी साधारण बातों का माप भी शामिल है, जैसे कार्य की गति, नाड़ी विकार (चित्त विकार) की मात्रा को नापने के लिये बनाई गई प्रश्नावलियाँ अथवा मुलाकातें इस प्रकार की परीक्षण-परिस्थितियों का निर्माण करना जिनमें उसके व्यवहार के विशेष रूपों जैसे परीक्षा में धोखा देना—को देखा जा सके, परीक्षार्थी के सम्मुख तस्वीरों अथवा स्याही के धब्बों को रखना जिनका वह अर्थ लगाए। इसके पीछे सिद्धान्त यह है कि इस प्रकार के अर्थ निकालने में वह अपने निजी व्यक्तित्व के कुछ पक्षों को विशेष रूप से बाहर प्रकट करता है......आदि-आदि। इस कार्य में जिन प्रणालियों का प्रयोग किया गया है तथा उनके जो परिणाम निकले हैं, उनके कुछ उदाहरण आगे दिए जायेंगे।

जहां तक गति का सम्बन्ध है एक अन्वेषण से (जो ऊपर लिखा जा चुका है) यह पता चला कि अलग रहने वाले अमरीकी इण्डियन बच्चों की कार्य करने की गति उन सफेद बच्चों की अपेक्षा कम थी जिनके साथ उनकी तुलना की गई थी। इण्डियन बच्चों के एक दूसरे समूह की काम करने की गति अपेक्षाकृत काफी अधिक तेज थी। ये बच्चे एक आधुनिक ढंग के स्कूल में शिक्षा पाते थे जहां बहुत से अध्यापक सफेद जाति के थे और जहां का सामान्य वातावरण तुलनात्मक रूप से सफेद जाति के बच्चों के स्कूलों के वातावरण के बिल्कुल समान था। इस नए वातावरण ने उनके व्यवहार में परिवर्तन कर दिया जिसके फलस्वरूप उस चीज का लोप हो गया जो इण्डियनों की जातीय विशेषता के रूप में दिखाई देती थी।

एक परीक्षण में जिसे 'प्रेसी क्रास आउट टेस्ट' कहते हैं, संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं को मापने का प्रयत्न किया गया है। इसमें परीक्षार्थी के सामने अनेक शब्द रखे जाते हैं। वह उन तमाम शब्दों को काट देता है जिन्हें वह अप्रिय अथवा गलत समझता है अथवा जिनका संबंध उन बातों से होता है जो उसे परेशान करती हैं... इत्यादि। एक प्रयोग में यह परीक्षण इसके निर्माताओं प्रोफेसर एस० एल० प्रैसी और एल० सी० प्रैसी ने अनेक विभिन्न अमरीकी इण्डियनों की जातियों पर

किया था। इसके परिणाम 'जर्नल आव एपलाइड साइकालाजी' १९३३ में छपे हैं। विभिन्न जातियों से जो परिणाम प्राप्त हुए उनमें काफी अन्तर है, और हमारे उद्देश्य के लिये जो और भी अधिक महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि इन अंकों में हमको उस मात्रा की झलक मिलती है जिस मात्रा में सफेद व्यक्तियों के आदर्शों, तरीकों, रीति-रिवाजों और दृष्टिकोणों ने इन विभिन्न इण्डियन समूहों को प्रभावित किया था। इन इण्डियनों ने परम्परागत संस्कृति से जितना ही अधिक संबंध रखा था, उतनी ही कम समानता सफेद जाति के परीक्षार्थियों तथा उनकी संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं में थी। इस बात को उलटे रूप में भी कहा जा सकता है। इन लेखकों ने यह परिणाम निकाला है कि ये परीक्षण वास्तव में सफेद आदमियों की संस्कृति के साथ सम्पर्क की मात्रा को मापते हैं। यह परिणाम उस दृष्टिकोण के साथ साफ तौर से मेल खाता है जो यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

व्यक्तियों की नाड़ी संबंधी प्रवृत्तियों के अध्ययन के लिए तथा उनकी पहचान के लिए जो प्रश्नावलियां तैयार की गई हैं, यदि उनका प्रयोग एक ही सांस्कृतिक वर्ग में किया जाए तो वे लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं, किन्तु यदि उनका प्रयोग विभिन्न वर्गों की तुलना के लिये किया जाये तो वे अत्यन्त गलत मार्ग पर ले जा सकती हैं। 'थर्स्टन न्यूरोटिक इनवेंटरी' नामक एक प्रकार की प्रश्नावलि के चीनी अनुवाद का प्रयोग दो चीनी मनोविज्ञान वेत्ताओं ने एक अन्वेषण में किया था। जब उन्होंने इसका प्रयोग चीन में किया तो उन्होंने देखा कि चीनी विद्यार्थी अमेरिकी विद्यार्थियों की अपेक्षा कहीं अधिक नाड़ी-विकार-ग्रस्त हैं। अन्वेषकों ने इस परिणाम को ऊपर से ठीक मान कर स्वीकार कर लिया और भय के साथ यह सुझाव रखा कि इसका कारण चीनी विश्वविद्यालयों में उचित मानसिक चिकित्सा का अभाव है। किन्तु जैसा कि बाद में चीनी और अमेरिकी दोनों ही देशों के मनोवैज्ञानिकों ने तत्परता के साथ बताया, वास्तव में बात यह है कि दो विभिन्न राष्ट्रीय जातियों के परिणामों का अर्थ एक ही प्रकार से नहीं किया जा सकता। दो विभिन्न प्रसंगों में इन प्रश्नों का महत्व एक-सा नहीं है, प्रश्नों के अनुवाद मात्र से भी उनके अर्थ में कुछ अन्तर हो जाता है। बौद्धिक परीक्षणों की भांति, कदाचित् उनसे भी अधिक, व्यक्तित्व-परीक्षणों में भी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का प्रभाव पड़ता है।

अमरीका में रहने वाले चीनी व्यक्तियों के विषय में जो रोरशेक प्रणाली का प्रयोग किया गया था, उसका उल्लेख अन्तिम उदाहरण के रूप में किया जा सकता है। इस प्रणाली का आविष्कार स्विस मनोविज्ञानवेत्ता स्वर्गीय हरमैन रोरशेक ने व्यक्तित्व-विश्लेषण के लिये किया था। इसमें दोनों ओर एक से ही स्याही के धब्बे होते हैं जो परीक्षार्थी को दिखाये जाते हैं और उसे यह बताना पड़ता है कि

वह उन धब्बों में क्या देखता है। वर्तमान समय में इसका प्रयोग विश्व के अनेक भागों में किया जा रहा है और यह एक लाभदायक ढंग प्रतीत होता है। जिस विशेष प्रयोग की ओर अभी हाल में संकेत किया गया है, उसमें चीन में उत्पन्न होने वाले चीनी व्यक्तियों तथा अमरीका में जीवन भर रहने वाले चीनी व्यक्तियों की तुलना करना संभव था। इनमें परस्पर कुछ प्रमुख भेद थे, किन्तु उस प्रयोग से जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिणाम निकाला जा सकता है, यह वह है कि अमरीका में उत्पन्न होने वाले चीनी व्यक्तियों के व्यक्तित्व में चीन में उत्पन्न चीनी व्यक्तियों कीअपेक्षा स्पष्ट अन्तर थे। टी० एम० अबेल और एफ० एल० के० सू नामक लेखकों के शब्दों में वे अमरीकी जीवन प्रणाली में प्रवेश करने के क्रम में थे। हम एक बार फिर यह देखते हैं कि किस प्रकार दो विभिन्न जातियों के समूह समान सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति में एक दूसरे के अधिक समान हो जाते हैं।

जाति और अनियमित व्यवहार—

जाति और मनोविज्ञान की समस्या पर एक दूसरे प्रकार से भी विचार किया जा सकता है। इसमें हम किसी वर्ग के सामान्य अथवा श्रेष्ठ व्यक्ति के विषय में विचार नहीं करते, किन्तु उन व्यक्तियों के विषय में करते हैं जो अनियमित अथवा भ्रष्ट व्यवहार वाले होते हैं। एक यह सुझाव रखा गया कि जातियों की विशेषताओं का ज्ञान इन व्यक्तियों की अत्यक्तिपूर्ण क्रियाओं और अनियमितताओं तथा इन क्रियाओं के अधिक स्वाभाविक रूप में प्रकट होने से हो सकता है। सन् १९२१ में अंगरेज मनोविज्ञान वेत्ता विलियम मैकडुगल ने एक पुस्तक प्रकाशित की थी (क्या अमरीका प्रजातंत्र के लिये सुरक्षित है ? Is America Safe for Democracy) जिसमें उसने इस मत का समर्थन किया था कि आत्मघात मनोविज्ञान में पाए जाने वाले जातीय भेदों का सूचक है। उसने कहा कि यह बात प्रायः देखने में आएगी कि नौरडिक व्यक्तियों में मेडीटरेनियन व्यक्तियों की अपेक्षा आत्मघात अधिक होते हैं, क्योंकि नोरडिक व्यक्ति अन्तर्मुख होते हैं, अर्थात् वे अपनी शक्तियों और उद्गारों को अन्दर की ओर, स्वयं अपने ही ऊपर, प्रेरित करते हैं। यदि कोई ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाए, जिसमें किसी नोरडिक को यह पता लग जाए कि उसकी पत्नी किसी दूसरे व्यक्ति से प्रेम करती है, तो वह, मैकडुगल के मतानुसार, स्वयं आत्मघात कर लेगा। किन्तु मेडीटरेनियन व्यक्ति बहिर्मुख होने के कारण, अपनी पत्नी अथवा अपने प्रतिद्वंद्वी का वध करेगा। इस विचार के पक्ष में कुछ आंकड़े प्रस्तुत किये गए हैं, किन्तु वे आंशिक और अपूर्ण हैं तथा बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य नहीं है। वास्तव में बात यह है कि प्राप्त आंकड़ों का पूर्ण परीक्षण करने से यह संकेत मिलता है कि उन देशों में

जहां की जनता को अधिकांश रूप में शारीरिक आधार पर नौरडिक या उत्तरी यूरोपियन माना जाता है, स्वीडन और डेनमार्क में आत्म हत्याओं की संख्या अधिक मिलती है, जबकि हालैण्ड और नार्वे में अपेक्षाकृत कम मिलती हैं। इसके अतिरिक्त हम यह जानते हैं कि आत्मघातों की संख्या धार्मिक पृष्ठभूमि के साथ बदलती रहती है (प्रोटेस्टटों की अपेक्षा कैथोलिकोंमें कम होती है), निवास-स्थान के आधार पर बदलती है (नगरों में अधिक और ग्रामों में कम होती हैं) व्यवसाय, सामाजिक, आर्थिक स्तर और सांस्कृतिक रुचियों के आधार पर बदलती रहती है। जातीय उत्पत्ति के साथ इनमें से किसी का भी कोई सीधा संबंध नहीं है।

जहां तक सामान्य अपराधों का सम्बन्ध है, उनके विषय में संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जो अध्ययन किया गया है उससे प्रकट होता है कि विदेशों से आकर बसने वाले व्यक्तियों में इस बात की विशेष अभिरुचि होती है कि वे मूल निवासियों के व्यावहारिक विशेषताओं के आदर्शों को शीघ्र ही अपना लेते हैं।

आंकड़ों से यह सिद्ध होता है कि इटली और आयरलैण्ड से आनेवाले पहली पीढ़ी के व्यक्तियों ने इस देश के कुछ भागों में समस्त अमरीकी जनता की अपेक्षा अधिक मानव-वध किए थे। एक पीढ़ी के बाद संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इस अपराध के आंकड़े बिल्कुल समान हो गए। दूसरे रूप में, आयरलैण्ड से आनेवाले व्यक्ति मूल अमरीका वासियों की अपेक्षा जुआ के अपराध में कम गिरफ्तार किए जाते हैं, किन्तु एक पीढ़ी के बाद उनमें भी जुआ खेलने की संख्या लगभग अमरीका-वासियों के स्तर तक पहुंच जाती है। वास्तव में शारीरिक रचना के अर्थ में आयरलैण्ड अथवा इटली के निवासियों की कोई जातियां नहीं है। वे राष्ट्रीय समूह हैं जो पितृ-परम्परागत शारीरिक विशेषताओं में परस्पर मिलते जुलते नहीं हैं। यहां भी यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि हम इस समय भी इसी परिणाम पर पहुंचते हैं जिसका उल्लेख ऊपर कई बार किया जा चुका है—जब दो वर्गों की सामाजिक परिस्थितियां अधिक समान हो जाती हैं, तो उनकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएं भी चाहे वे असाधारण हों अथवा साधारण—समान हो जाती हैं। यहां यह भी कहा जा सकता है कि मानसिक रोग के लिए भी तत्वतः प्रायः वही परिस्थिति होती है जो अपराध के लिये होती है। ऐसे किसी जातीय तत्व की खोज नहीं हुई है जो इसके लिये जिम्मेदार हो।

सांस्कृतिक भेद

यहां जो कुछ कहा गया है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि जातियों के सब समूह व्यवहार में समान होते हैं। वास्तव में वे समान नहीं होते, अथवा वे कुछ बातों में समान होते हैं और कुछ में नहीं। एक चीन वासी और एक फ्रांसीसी

मानव होने के नाते बहुत सी बातों में समान होते हैं, और उनमें भेद भी होंगे क्योंकि उनका पालन-पोषण विभिन्न समाजों में हुआ है। उनके शारीरिक आकारों में भी भेद होगा, और उनकी पितृ परम्परागत शारीरिक रचना अथवा जाति में भी भेद होगा। किन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है, जाति के भेदों का अर्थात् शारीरिक और शरीर रचना संबंधी भेदों का, व्यवहार में पाए जानेवाले भेदों से कोई संबंध प्रतीत नहीं होता है।

यदि जाति का कोई संबंध नहीं है तो विभिन्न मानव समूहों की संस्कृति और व्यवहार में भेद क्यों पाए जाते हैं? ऐसे भेद किस प्रकार उत्पन्न हो गए? इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं है। इसके कारण इतिहास की गहराई में हो सकते हैं, उनका संबंध प्राकृतिक परिस्थितियों से हो सकता है। आसपास के व्यक्तियों के संपर्क से हो सकता है, उन समस्याओं से हो सकता है जिनको हल करना पड़ा और उन तरीकों से हो सकता है जो उन समस्याओं को हल करने के लिये संयोगवश अपनाए गए। अधिकांश रूप में हम वास्तव में नहीं जानते कि ये भेद पहले पहल कैसे और क्यों उत्पन्न हुए? हमारे काम के लिये महत्वपूर्ण बात यह है कि ये भेद हैं अवश्य। उनको अस्वीकार करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं। हमें उनका अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए और उनके रूप को समझना चाहिए। किन्तु उनको समझने में हमें दो महत्वपूर्ण गलतियों से सावधान रहना चाहिए। पहली गलती तो यह है कि हम उसका कारण किसी जाति को बताते हैं। दूसरी गलती यह है कि हम अन्य संस्कृतियों को अपनी संस्कृति की अपेक्षा केवल इस कारण हीन समझते हैं क्योंकि वे हमारी संस्कृति से भिन्न हैं।

इन गलतियों में से पहली के विषय में विस्तारपूर्वक विचार हो चुका है। किन्तु दूसरी भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे हीनता और उच्चता की भावनाएं उत्पन्न होती हैं जो श्रेष्ठ मानवीय संबंधों के लिये सहायक नहीं हैं। यह एक एसी गल्ती है जो सारे इतिहास में दिखाई देती है और जिसमें विभिन्न जातियों ने अपना योग-प्रदान किया है। शायद इसकी झलक अधिकतर पश्चिमी व्यक्तियों के लेखों में मिलती है किन्तु इसमें केवल वे ही सम्मिलित नहीं हैं, अन्य भी हैं। चीन के एक सम्राट के विषय में यह लेख मिलता है कि उसने सन् १७९३ ई० में इंगलैण्ड के बादशाह को यह लिखा था :—"हमारे पास सब चीजें हैं। मैं विचित्र अथवा चमत्कारपूर्ण वस्तुओं का कोई मूल्य नहीं समझता।" लेकिन ऐसी कोई जाति नहीं होती जिसके पास सब चीजें होती हैं। विभिन्न राष्ट्रों में जिन विभिन्न जीवन शैलियों का विकास हुआ है, उनसे यह विश्व समृद्ध बना है। मानव सभ्यता में जो कुछ शिव, सत्य और मूल्यवान है, उस पर किसी भी एक राष्ट्र का पूर्णाधिकार नहीं है।

इस अवसर पर एक ऐस्किमो ने अपने लिखित पत्र में जो भाव व्यक्त किए हैं

उन पर पुर्नविचार करना लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। इस ऐस्किमो की समझ में यह बात नहीं आती थी कि मनुष्य परस्पर एक दूसरे का शिकार सील मछली की भांति क्यों खेलते हैं और वे उन आदमियों से क्यों छिपते हैं जिन्हें उन्होंने कभी देखा या जाना नहीं है। वह अपने देश को सम्बोधित करते हुए एक व्याख्यान में इन भावों को व्यक्त करता है :—

"यह कितनी अच्छी बात है कि तुम बर्फ और तुषार से ढके हुए हो। यह कितनी अच्छी बात है कि यदि तुम्हारी चट्टानों में सोना और चांदी हो, जिसके लिए दूसरे व्यक्ति इतने अधिक लोलुप हैं, तो वह इतनी अधिक वर्फ से ढका हुआ है कि वे वहां तक पहुंच ही नहीं सकते। तुम्हारे अनुपजाऊ होने से हम प्रसन्न हैं क्योंकि इस कारण हम आपत्तिपूर्ण छेड़छाड़ से बचे रहते हैं।" उसने इस बात पर आश्चर्य किया है कि यूरोपवासियों ने ऐस्किमो व्यक्तियों से शिष्टाचार के अच्छे तरीके नहीं सीखे हैं। और सबसे अधिक मजे की बात यह है कि उसने शांति के लाभों की शिक्षा देने के लिये डाक्टरों को प्रचारकों के रूप में भेजने का प्रस्ताव रखा है। हां हम वास्तव में दूसरे व्यक्तियों के जीवन के तरीकों से कुछ न कुछ सीख सकते हैं।

व्यक्तियों में वास्तव में अन्तर होता है, किन्तु उनकी जाति के कारण नहीं। महान् अंगरेज दार्शनिक और अर्थशास्त्रज्ञ जान स्टुअर्ट मिल ने इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है :

> "मानव मस्तिष्क पर सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों का जो प्रभाव पड़ता है, उस पर विचार न करके, उससे बचने के लिये जितने गन्दे तरीके अपनाए गये हैं, उनमें सबसे गंदा तरीका यह है कि हम व्यवहार और चरित्र में भेदों का कारण पैदाइशी स्वाभाविक भेदों को मानते हैं।"

वंश-परम्परा—

यह अन्तिम चेतावनी है। मनोविज्ञान वेत्ताओं तथा अन्य विज्ञानवेत्ताओं का यह मत नहीं कि वंश परम्परा का मनोवैज्ञानिक भेदों से किसी प्रकार का कोई संबंध ही नहीं है। सभी व्यक्ति और कुटुम्ब समान रूप से शक्ति-सम्पन्न नहीं होते, कुछ की पितृ-परम्परागत मानसिक शक्ति श्रेष्ठ होती है, कुछ की हीन। इस तथ्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। इसके पक्ष में काफी प्रमाण मिलते हैं। लेकिन यह बात इस कथन से बिल्कुल भिन्न है कि जातियों अथवा जातीय समूहों में पैतृक मनोवैज्ञानिक भिन्नताएं होती हैं। इस विषय में कोई प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत, प्रत्येक जातीय वर्ग में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अधिक प्रतिभाशाली हैं, कुछ ऐसे होते हैं, जो हीन हैं तथा कुछ मध्यम श्रेणी के भी होते हैं। जहां

तक हम निर्णय कर सकते हैं, सभी जातीय वर्गों में शक्तियों की विस्तार-सीमायें और पैतृक शक्ति के विभिन्न स्तरों की अक्सर अभिव्यक्तियां लगभग समान हैं।

विज्ञान वेत्ता को जाति और मनोविज्ञान के किसी संबंध का ज्ञान नहीं अर्थात् एक वैज्ञानिक के मत में जाति और मनोविज्ञान में कोई संबंध नहीं होता है।